Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

M.COM -205
वित्तीय प्रबन्ध

खण्ड
1
वित्तीय निर्णय

इकाई- 2
कार्यशील पूँजी प्रबन्ध 3

इकाई- 3
कार्यशील पूँजी का अनुमान 16

इकाई- 4
स्कन्ध एवं प्राप्य बिलों का प्रबन्ध 29

इकाई- 5
रोकड़ प्रबन्ध 16

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 एम0 बी0 शुक्ला	डीन वाणिज्य एवं प्रबन्ध संकाय, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

लेखक

डॉ0 डी0 डी0 बेडिया	रीडर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के है।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज - 2024

ISBN -

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही है।

प्रकाशक- उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित वर्ष - 2024.

मुद्रक - के0 सी0 प्रिंटिंग एण्ड एलाइड वर्क्स , पंचवटी , मथुरा - 281003.

इकाई– 2 कार्यशील पूँजी प्रबन्ध (Working Capital Management)

इकाई की संरचना

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 कार्यशील पूँजी का अर्थ

2.4 कार्यशील पूंजी की अवधारणा एवं प्रबन्ध

2.5 कार्यशील पूंजी की आवश्यकता एवं महत्व

2.6 कार्यशील पूंजी को प्रभावित करने वाले तत्व

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 स्व–परक प्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

कार्यशील पूंजी का अर्थ बता सकें।

कार्यशील पूंजी का अवधारणा बता सकें।

कार्यशील पूंजी की आवश्यकता को समझा सकें।

कार्यशील पूंजी को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या कर सकें।

2.2 प्रस्तावना

किसी भी संगठन में कार्यशील पूंजी एक महत्वपूर्ण वित्त स्रोत है जिससे संगठन के दैनिक व्ययों या आवश्यकताओं के पूर्ति होती है। इकाई में कार्यशील पूंजी का अर्थ कार्यशील पूंजी की विचारधारा, कार्यशील पूंजी की आवश्यता एवं कार्यशील पूंजी को प्रभावित करने वाले तत्वों को क्रमानुसार प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक व्यवसाय जगत में कार्यशील पूंजी किसी भी संगठन में एक महत्वपूर्ण वित्त का स्रोत है जो अल्पकालीन वित्त के माध्यम से संगठन की आवश्यकता पूर्ति करती है। व्यावसायिक संस्था के सुचारू संचालन के लिए कार्यशील पूंजी का कुशलतापूर्वक संचालन करना ही कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध कहलाता है।

2.3 कार्यशील पूँजी का अर्थ

व्यवसाय के संचालन से सम्बन्धित दिन–प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कुछ सम्पत्तियों की आवश्यकता होती है। इन सम्पत्तियों में रोकड़, प्राप्त विपत्र, विनियोग, कच्चा माल, निर्मित माल एवं अल्पकालीन ऋण आदि को सम्मिलित किया जाता है। इन सम्पत्तियों में विनियोजित पूंजी को कार्यशील पूंजी कहते हैं। कार्यशील पूंजी व्यवसाय के दिन–प्रतिदिन के आवश्यकताओं की पूर्ति एवं प्रगति हेतु स्थिर सम्पत्तियों के लिए आवश्यक पूंजी के साथ–साथ चालू सम्पत्तियों के लिए भी पर्याप्त पूंजी की व्यवस्था करती है। किसी भी कोष की प्राप्ति जो चालू सम्पत्तियों को बढ़ाता है। उस कोष को कार्यशील पूँजी की संज्ञा दी जाती है।

2.4 कार्यशील पूँजी की अवधारणा एवं प्रबन्ध

कार्यशील पूंजी का अर्थ बहुत विवादास्पद है। इसकी सर्वमान्य परिभाषा नहीं है।अलग अलग विद्वानों ने अलग अलग ढंग से इसका अर्थ प्रस्तुत किया है। अतः कार्यशील पूंजी के वास्तविक अर्थ को समझने के लिए उसकी अवध ाारणाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण आवश्यक है।

कार्यशील पूंजी की अवधारणाएँ निम्न हैं –

(1) परिणात्मक अवधारणा–

इस अवधारणा के अनुसार कार्यशील पूंजी की मात्रा व्यवसाय की कुल चालू सम्पत्तियों की मात्रा के बराबर होती है। सकल कार्यशील पूंजी (Gross Working Capital) संस्था की समस्त चल सम्पत्तियों का योग (Total Current Assets) ही सकल कार्यशील पूंजी है। चालू सम्पत्तियों से आशय उन सम्पत्तियों से है जिन्हें लेखांकन वर्ष के दौरान रोकड़ में परिवर्तित किया जा सकता है। इसमें रोकड़ बैंक शेष, अल्पकालीन विनियोग, देनदार प्राप्य विपत्र और रहतिया को सम्मिलित किया जाता है।

(2) गुणात्मक अवधारणा –

इस विचारधारा के अनुसार चालू सम्पत्तियाँ, चालू दायित्वों से अनिवार्य रूप से अधिक होने चाहिए। यदि व्यवसाय में चालू सम्पत्तियाँ एवं चालू दायित्व बराबर होंगे तो संस्था में कार्यशील पूंजी शून्य होगी। कार्यशील पूँजी का यह अर्थ

एकाकी व्यापार एवं साझेदारी संगठनों में अधिक उपयुक्त माना जाता है जहाँ स्वामित्व एवं प्रबन्ध दोनों एक ही हाथ में केन्द्रित होते हैं। यह परिभाषा **गुणात्मक** पहलू (Qualitative Aspects) पर अधिक बल देती हैं और लेखाकन में सरलता, वित्तीय सुदृढ़ता और सुरक्षा सीमा का सूचक होती है।

(3) परिचालन चक्र अवधारणा –

इस अवधारणा के अनुसार व्यवसाय एक गतिशील क्रिया है और इसकी दिन प्रतिदिन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नकद वित्त की आवश्यकता होती है जिसकी प्राप्ति चक्रीय पूंजी के माध्यम से आसानी से की जा सकती है। एक व्यावसायिक संस्था के लिए कितनी नकद राशि की आवश्यकता होती है। यह उसके परिचालन चक्र पर निर्भर करता है अर्थात सामग्री के क्रय एवं नकद में उसके परिवर्तन के मध्य का समय परिचालन चक्र अथवा कार्यशील पूंजी कहलाता है। आधुनिक अवधारणा (Modern Concept) आजकल कार्यशील पूंजी की एक नवीन अवधारणा विकसित हुई है जो परिचालन चक्र अवधारणा (Operating Cycle Concept) के नाम से भी जानी जाती है। इस अवधारणा के अनुसार "कार्यशील पूंजी उपक्रम पूंजी का वह तरल भाग है जिसकी सामान्य परिचालन चक्र की अवधि में आवश्यकता होती है। किसी उपक्रम की सम्पूर्ण परिचालन अवधि में जितनी नकद धन की आवश्यकता होती है, वह कार्यशील पूंजी कहलाती है। नकद धन की जरूरत परिचालन चक्र की अवधि के परिचालन व्ययों पर आधारित होती है। प्रारम्भ में कार्यशील पूंजी के लिए नकद धन की आवश्यकता होती है। इसके बाद नकद धन से कच्चा माल क्रय किया जाता है। उत्पादन प्रक्रिया कच्चे माल को अर्द्धनिर्मित माल एवं निर्मित माल में परिवर्तित कर देती है। निर्मित माल को उधार विक्रय करने पर स्वस्थ्य देनदार अथवा प्राप्त विपत्र का हो जाता है। जिनसे बाद में नकद धन वसूल किया जाता है यह कार्यशील पूंजी का परिचालन चक्र बारम्बार चलता रहता है। इस चक्र के दौरान पूंजी का एक स्वरूप दूसरे स्वरूप में अर्थात नकद से कच्चा माल अर्द्धनिर्मित माल निर्मित माल देनदार व प्राप्त विपत्र नगद में परिवर्तन होता रहता है। परिचालन चक्र की अवधि की गणना इस उदाहरण से समझी जा सकती है। अगर किसी व्यावसायिक संस्था में नकद रोकड़ से कच्चा माल खरीद कर 20दिन भण्डार में रखा जाता है। कच्चा माल को निर्मित माल बनाने में उत्पादन प्रक्रिया 15 दिन लेती है निर्मित माल रहतिया में 27 दिन रहने के बाद उधार विक्रय होता

है, उधार विक्रय के 10 दिन बाद प्राप्य विपत्र प्राप्य होता है और प्राप्य विपत्र से रोकड़ की वसूली 18 दिन के बाद हो तो एक परिचालन चक्र की अवधि 90दिन (20+15+27+10+18) होगी।

परिचालन चक्र की अवधि जितनी कम होगी, कार्यशील पूंजी की आवश्यकता भी उतनी ही कम होगी उपरोक्त उदाहरण में वर्ष के प्रारम्भ में विनियोजित एक रूपया 90 वें दिन एक चक्र पूरा करने के बाद 91वें दिन दूसरा चक्र प्रारम्भ कर देगा। इस प्रकार वर्ष में लगभग 4 चक्र (365/90) पूरे हो जावेंगे। अगर संख्या में वर्ष भर के कुल परिचालन व्यय 4 लाख रूपये हो तो इस अवधारणा के अनुसार 1 लाख रूपये (400000/4) कार्यशील पूँजी कहा जायेगा।

कार्यशील पूँजी प्रबन्ध (Working Capital Management) –

व्यवसाय में पर्याप्त मात्रा में कार्यशील पूंजी का होना आवश्यक है। इस दृष्टि से व्यवसाय की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए कार्यशील पूंजी की मात्रा आवश्यकता अनुसार होने चाहिए। कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध का उद्देश्य संस्था की चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों के मध्य इस प्रकार सामंजस्य स्थापित करना होता है कि, कार्यशील पूंजी की मात्रा का निर्धारण अनुकूलतम हो सके। अतः कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध वित्तीय प्रबन्ध का आंतरिक भाग है। इसलिए कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध एक संस्था के आर्थिक स्रोतों पर नियंत्रण करने एवं उसकी लाभदायिकता को बनाये रखने में सहायक सिद्ध होता है। कार्यशील पूंजी का प्रबन्ध उस संस्था की जोखिम, तरलता एवं लाभदायिकता के बीच सही सामंजस्य बनाए रखने में सहायता करता है।

प्रत्येक व्यवसाय के संचालन के लिए स्थायी एवं कार्यशील दो प्रकार की पूंजी की आवश्यकता पड़ती है। स्थायी पूंजी को स्थिर सम्पत्तियों जैसे – भूमि, भवन, संयन्त्र मशीनरी, फर्नीचर, फिटिंग्स इत्यादि में प्रयोग किया जाता है। इनके उचित प्रबन्ध के लिए पूंजी बजटन, आदि प्रविधियाँ काम में लाई जाती हैं। इसके विपरीत, कार्यशील पूंजी व्यवसाय के दिन–प्रतिदिन के कार्यों को संचालित करने के लिए आवश्यक होती है, इन्हें चल सम्पत्तियों में विनियोग किया जाता है। इन चल सम्पत्तियों में रोकड़ रहतिया, प्राप्य विपत्र, आदि सम्मिलित होते हैं। कार्यशील पूंजी प्रबन्ध का सम्बन्ध चालू सम्पत्तियों व चालू दायित्वों के अर्न्तसम्बन्धों को व्यवस्थित करने से होता है। "कार्यशील पूंजी प्रबन्ध उन समस्याओं से सम्बन्धित है जो चालू सम्पत्तियों, चालू दायित्वों एवं पारस्परिक अन्तरसम्बन्धों को प्रबन्धित

करने से उत्पन्न होती है। "कार्यशील पूंजी प्रबन्ध विविध चालू सम्पत्तियों जैसे, रोकड़ एवं विपणन योग्य प्रतिभूतिया प्राप्य विपत्र एवं रहतिया के प्रशासन से सम्बन्धित होता है।

2.5 कार्यशील पूँजी की आवश्यकता एवं महत्व

व्यवसाय का संचालन उचित मात्रा में स्थायी सम्पत्तियों का प्रबन्ध कर लेने मात्र से ही नहीं किया जा सकता बल्कि इन सम्पत्तियों का पूर्ण उपयोग करके ही व्यवसाय में लाभ अर्जित किया जा सकता है। स्थायी सम्पत्तियों का पूर्ण उपयोग कार्यशील पूंजीं के उचित उपयोग पर निर्भर करता है। अतः व्यवसाय की दिन–प्रतिदिन की क्रियाओं में कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। इसकी आवश्यकता व्यवसाय की सम्पत्तियों की क्रय शक्ति को सुरक्षा प्रदान करना एवं विनियोगों पर प्रत्याय बढ़ाना है। इस हेतु कार्यशील पूंजी का निर्धारण व्यवसाय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। सामान्यतः किसी भी व्यवसाय में कार्यशील पूंजी की मात्रा न तो आवश्यकता से अधिक होनी चाहिए और न ही कम। दोनों ही स्थितियां व्यवसाय के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। एक व्यवसाय में कार्यशील पूंजी का वही स्थान होता है जो मानव शरीर में हृदय का होता है । हृदय को जैसे ही रक्त मिलता है वह कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। वैसे ही व्यवसाय में कार्यशील पूँजी स्रोत के एकत्रित होते ही व्यवसाय अपनी गतिविधियाँ आरम्भ करने लगता है और जैसे ही वह प्रवाह रूक जाता है व्यवसाय समापन की ओर अग्रसर होने लगता है। इसलिए कहा जाता है कि व्यवसाय की तरलता की आवश्यकताएँ क्या हैं? और दायित्वों का भुगतान कब और कितने समय बाद करना है?

संस्था के पास जितनी चल सम्पत्तियॉ हैं उन्हें किस दर या सीमा से परिवर्तित किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त संस्था की स्वन्ध नियंत्रण प्रणाली एवं स्थायी सम्पत्तियों के प्रशासन का भी अध्ययन करना आवश्यक है।

पर्याप्त कार्यशील पूँजी के लाभ (Advantages of Adequate Working Capital)-

जिस प्रकार मनुष्य के जिन्दा रहने के लिए भोजन आवश्यक है उसी प्रकार कार्यशील पूँजी की उचित मात्रा व्यवसाय के लिए महत्वपूर्ण होती है। परन्तु कार्यशील पूँजी का आवश्यकता से अधिक या कम होना दोनों ही

हानिकारक हैं। अधिक व बिना प्रयोजन कार्यशील पूँजी होने से धन के दुरूपयोग, प्रबन्धकीय अकुशलता, अंशधारियों में असन्तोष, लाभदायकता में कमी, खर्चों में वृद्धि, वित्तीय संस्थाओं का अविश्वास, सट्टेबाजी को जन्म व अंश मूल्यों में कमी की दिक्कतें आती हैं। इसके विपरीत, कार्यशील पूंजी की कमी होने पर व्यवसाय के संचालन, सरलता, लाभदायकता, व आकस्मिकताओं का सामना करने में कठिनाई आती है। पर्याप्त मात्रा में कार्यशील पूंजी से उपक्रम को निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं –

1. व्यवसाय की शोधनक्षमता (Solvency of the Business)-

पर्याप्त कार्यशील पूंजी उत्पादन के निर्बाध प्रवाह की व्यवस्था द्वारा कम्पनी की शोधनक्षमता बनाये रखने में सहायक होती है। उच्च शोधन क्षमता तृतीय पक्षों की दृष्टि में कम्पनी की वित्तीय स्थिति की सुदृढ़ता का प्रतीक होती है और आवश्यकता पड़ने पर तत्काल उधार लेने में कोई दिक्कत नहीं होती है।

2. नकद छूट का लाभ (Advantage of Cash Discounts) –

कम्पनी अपने आपूर्तिकर्ताओं को उधार खरीदे गये माल का तुरन्त नकद भुगतान करके आकर्षक छूट प्राप्त कर सकती है। इससे लागत पर नियंत्रण और मूल्यों में कमी सम्भव होती है।

3. आकर्षक लाभांश एवं अंश मूल्यों में स्थिरता (Attractive dividends and Stability in share prices) –

पर्याप्त कार्यशील पूंजी होने पर कम्पनी के संचालक एवं प्रबन्धक अंशधारियों को आकर्षक लाभांश वितरित कर सकते हैं। ऐसी दशा में अंशधारी तो संतुष्ट रहते ही हैं साथ ही साथ कम्पनी की प्रतिभूतियों का बाजार मूल्य भी स्थिर रहता है।

4. अनुकूल बाजार अवसरों का लाभ (Exploitation of Favourable Market Opportunities) –

केवल वे प्रतिष्ठान ही जिनके पास यथेष्ट कार्यशील पूंजी है अनुकूल बाजार अवसरों का लाभ उठा सकते हैं । अचानक निर्मित माल आपूर्ति का बड़ा आदेश मिलने पर अथवा कच्चे माल के मूल्यों में कमी होने पर कम्पनी कार्यशील पूंजी की पर्याप्तता के आधार पर लाभ उठा सकती है।

5. संकटों का सामाग (Facing the Crisis) –

पर्याप्त कार्यशील पूँजी होने पर कोई भी संस्था छोटे छोटे संकटों,

आकस्मिक घटनाओं व व्यापारिक संकटों का सरलतापूर्वक सामना कर सकती हैं।

6. उच्च मनोबल (High Morale) –

कार्यशील पूंजी के यथेष्ठ होने से व्यवसाय में सुरक्षा का वातावरण, आत्मविश्वास, उच्च मनोबल, समग्र कार्यदक्षता उत्पन्न होती है। जिससे प्रबन्धक व कर्मचारियों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। अन्ततोगत्वा संस्था की कुशलता एवं लाभार्जन क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

7 अन्य लाभ (Other Advantages) –

क. वेतन मजदूरी व अन्य दैनिक कार्यों का नियमित भुगतान,

ख. स्थायी सम्पत्तियों की उत्पादकता में वृद्धि,

ग. विनियोगों पर उचित प्रत्याय,

घ. आकस्मिक भुगतान की सुविधा।

कार्यशील पूंजी के प्रकार अथवा वर्गीकरण (Kinds or Classification of working capital) –

कार्यशील पूँजी का वर्गीकरण निम्न चार वर्गों में किया जाता है।

1. सकल कार्यशील पूँजी (Gross Working Capital)–

इसका अभिप्राय चालू सम्पत्तियों के कुल योग से होता है। रोकड़ बैंक, शेष, देनदार, प्राप्य विपत्र, पूर्ववत भुगतान, आदि जैसी चालू सम्पत्तियों का योग सकल कार्यशील पूँजी कहा जाता है।

2. शुद्ध कार्यशील पूँजी (Net Working Capital) –

यह चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों का अन्तर होता है। शुद्ध कार्यशील पूंजी की मात्रा सकल कार्यशील पूंजी का वह भाग होती है जिसका वित्तीयन दीर्घकालीन कोषों से किया जाता है। इसकी गणना दीर्घकालीन पूंजी में से स्थायी सम्पत्तियों को घटाकर की जा सकती है। संक्षेप में,

Networking Capital = Current Assets - Current Liabilities

Or

Networking Capital = Long-term Capital - Fixed Assets

3. स्थायी कार्यशील पूंजी (Fixed Working Capital) –

कार्यशील पूंजी की वह मात्रा जो व्यवसाय के सामान्य संचालन के लिए नियमित रूप से सदैव रखी जानी चाहिए, स्थायी कार्यशील पूंजी कही जाती है।

इसकी प्रकृति स्थायी एवं दीर्घकालीन होती है जिसका वित्तीयन भी दीर्घकालीन वित्तीय स्रोतों से किया जाता है।

4. परिवर्तनशील कर्याशील पूंजी (Variable working capital) –

स्थायी कार्यशील पूंजी के अतिरिक्त वर्ष के कुछ महीनों में व्यापार की अधिकता के कारण परिवर्तनशील कार्यशील पूंजी की आवश्यकता भी पड़ सकती है। चीनी उद्योग, ऊनी वस्त्र उद्योग, फ्रीज, कूलर, आदि मौसमी वस्तुओं को उत्पादित करने वाली संस्थाओं को मौसम के खास महीनों में इस प्रकार की अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता होती है मौसमी प्रकृति के कारण इसकी मात्रा घटती बढ़ती रहती है। जिसकी व्यवस्था अल्पकालीन स्रोतों से की जाती हैं।

2.6 कार्यशील पूँजी को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining Working Capital)

कार्यशील पूंजी की मात्रा को निर्धारित करने वाले प्रमुख तत्व निम्नलिखित है–

1. व्यवसाय का स्वरूप (Character of Business) –

कार्यशील पूंजी की मात्रा को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक प्रमुख कारक व्यवसाय का स्वरूप है। रेलवे, सड़क, गैस, आदि जनोपयोगी व सेवा संस्थाओं में निरन्तर मांग और नकद विक्रय होने से कम कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। इनकी माँग सदैव रहने से रोकड़ प्रवाह अनवरत होता रहता है। इसके विपरीत, विलासिता व सौन्दर्य प्रसाधन उत्पन्न करने वाली संस्थाओं एवं व्यापारिक संस्थाओं में अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। इनकी परिवर्तनशील माँग होने के कारण रहतिया में बहुत विनियोजन करना पड़ता है।

2. व्यवसाय का आकार (Size of Business) –

एक संस्था की कार्यशील पूँजी की मात्रा उसके व्यवसाय के आकार से प्रत्यक्षतः जुड़ी होती है। एक छोटे आकार के व्यवसाय के लिए नकद रोकड़, प्राप्य बिल तथा रहतिया के लिये अपेक्षाकृत कम पूँजी की आवश्यकता होती है। बड़े आकार के व्यवसाय के लिए अधिक कार्यशील पूंजी की आवयकता होती हैं।

3. उत्पादन प्रक्रिया की अवधि (Length of Production Process) –

यदि उत्पादन प्रक्रिया अधिक समय लेने वाली होती है तो स्वाभाविक तौर पर कच्चे माल को निर्मित माल का रूप देने में अधिक समय, लागत और श्रम

लगता है जिसके परिणामस्वरूप अधिक कार्यशील पूंजी चाहिए। किन्तु यदि उत्पादन प्रक्रियां की अवधि अपेक्षाकृत छोटी होती है तो कम मात्रा में कार्यशील पूँजी चाहिए।

4. कार्यशील पूँजी चक्र (Working Capital Cycle) –

कार्यशील पूंजी चक्र कच्ची सामग्री के क्रय से प्रारम्भ होता है तथा निर्मित माल के रूपान्तरण व निर्मित माल के विक्रय से रोकड़ की वसूली के साथ समान होता है। कार्यशील पूंजी चक्र की अवधि जितनी लम्बी होगी, उसकी आवश्यकता भी उतनी ही अधिक होगी।

5. क्रय की शर्तें एव रीतियाँ (Terms and Methods of Purchase)–

कच्चा माल व अन्य सामान किन महीनों व शर्तों पर क्रय किया जाता है का सीधा प्रभाव कार्यशील पूंजी की मात्रा पर पड़ता है। यदि कच्चे माल की समस्त वार्षिक जरूरत को फसल के ही समय एक साथ खरीद कर रख लिया जाता है तो कार्यशील पूँजी की अधिक आवश्यकता होगी, परन्तु वर्ष पर्यन्त स्थानीय बाजार से कच्चा माल क्रय किया जाता है तो कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार यदि कच्चा माल विक्रेता से लम्बी अवधि के उधार पर आपूर्ति किया जाता है तो उसे निर्मित करने के बाद बेचकर कच्चे माल का भुगतान किया जा सकता है। परन्तु यदि कच्चा माल नकद खरीदना पड़ता है तो फिर अधिक कार्यशील पूंजी की व्यवस्था करनी पड़ती होगी।

6. विक्रय की शर्तें (Terms of Sale) –

माल का विक्रय नकद एवं उधार किया जा सकता है। यदि निर्मित माल नकद बेचा जाता हो तो कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। यदि माल उधार बेचा जाता है तो उसके भुगतान में अधिक समय लगता है तो निश्चित तौर पर अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी।

7 व्यवसाय चक्र (Business Cycle) –

व्यवसाय चक्र भी कार्यशील पूंजी की मात्रा को प्रभावित करते हैं। तेजी काल में विक्रय में वृद्धि, कीमतों में बढ़ोत्तरी व व्यवसाय के आशावादी विस्तार, आदि के कारण अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता पड़ती है। मन्दी के समय मांग कम होने के कारण विक्रय में गिरावट आती है, व्यापार में संकुचन होता है व देनदारों से धन वसूली में दिक्कत आती है। ऐसी स्थिति में कार्यशील पूंजी का

एक बड़ा भाग निष्क्रिय पड़ा रह सकता है।

8. बैंकिंग सम्बन्ध (Banking Connections)-

ऐसी संस्थाए जो बैंकों से अच्छे व मधुर सम्बन्ध विकसित करने में सक्षम होती है तथा बैंक की दृष्टि से जिनकी साख उत्तम होती है वे कम कार्यशील पूंजी से भी व्यवसाय संचालित कर सकती हैं। आवश्यकता होने पर बैंक उन्हें शीघ्रता से वित्त प्रदान कर सकता है।

9. लाभांश नीति (Dividend Policy)

अगर कम्पनी उदार लाभांश नीति अपनाती है तो लाभांश वितरित करने के लिए अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। दूसरी ओर, यदि कम्पनी नकद लाभांश न वितरित करके बोनस अंशों का निर्गमन करती है तो यह कार्यशील पूँजी की मात्रा में कमी लाएगा।

10. व्यवसाय के विकास की दर (Role of Growth of Business) -

एक संस्था की कार्यशील पूँजी की आवश्यकताएं इसकी व्यावसायिक क्रियाओं के विस्तार और विकास के साथ–साथ बढ़ती है । यदि व्यापार विस्तार व विकास की दर धीमी है तो कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी जिसकी व्यवस्था लाभों के पुर्नविनियोग (Ploughing Back of Profits) से की जा सकती है। किन्तु यदि व्यापार का विस्तार बड़े पैमाने पर किया जाता है तो तीव्र विकास हेतु अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता पड़ती है।

11. अन्य कारक (Other factors) –

कुछ अन्य तत्व जैसे, मूल्य स्तर परिवर्तन, प्रबन्धकीय योग्यता, राजनीतिक स्थायित्व, युद्ध आशंका, आयात नीति, परिवहन व संचार की सुविधा, आदि भी कार्यशील पूँजी की आवश्यकता प्रभावित करती हैं ।

कार्यशील पूँजी के स्रोत अथवा साधन (Sources of working capital)–

कार्यशील पूंजी दो प्रकार के साधनों (अ) दीर्घकालीन साधन, तथा (ब) अल्पकालीन साधन से प्राप्त की जा सकती है। इनका विवेचन निम्नलिखित है:–

(अ) दीर्घकालीन साधन (Long Term Sources) –

स्थायी कार्यशील पूंजी का वित्त पोषण करने के लिए उपक्रम को दीर्घकालीन साधनों को ही अपनाना चाहिए। दीर्घकालीन साधनों से ही लम्बे

समय तक के लिए, वित्त प्राप्त हो सकता है। कार्यशील पूंजी के दीर्घकालीन साधन निम्नलिखित हो सकते हैं –

1. अंश (Share) –

नये अंशों का निर्गमन कार्यशील पूँजी का मुख्य साधन है। एक कम्पनी समता और पूर्णाधिकार अंशों का निर्गमन कर सकती है। पहले स्थगित अंशों (Defered shares) के निर्गमन का अधिकार कम्पनियों को प्राप्त था जिसे भारतीय कम्पनी अधिनियम 1956 के द्वारा रोक दिया गया है। पूर्वाधिकार अंशों को एक निश्चित दर से लाभांश प्राप्ति के सम्बन्ध में और कम्पनी समापन के समय पूंजी के पुनर्भुगतान के लिए प्राथमिकता प्राप्त होती है। समता अंशों को लाभ की उपलब्धता के आधार पर लाभांश प्रदान किया जाता है। कम्पनी को अंशों के निर्गमन से स्थायी कार्यशील पूंजी की अधिकतम राशि की व्यवस्था करनी चाहिए।

2. ऋणपत्र (Debenture) –

ऋण पत्र निर्गमन भी अंशों की ही भांति कार्यशील पूंजी का महत्वपूर्ण साधन है। ऋणपत्र किसी भी धारक को ऋण की स्वीकृति का कम्पनी द्वारा निर्गमित प्रपत्र होता है। ऋणपत्र धारक कम्पनी के लेनदार होते हैं और निश्चित दर से ब्याज प्राप्त करने के हकदार होते हैं।

3. प्रतिपादित लाभ (Retained Profits) –

यह वित्त का एक आन्तरिक साधन है जो सर्वाधिक सस्ता और वस्तुतः लागतविहीन स्रोत होता है। यह साधन पूर्व स्थापित संस्थाओं द्वारा अपने विस्तार, आधुनिकीकरण और प्रतिस्थापन आदि के लिये प्रयोग किया जाता है।

4. प्राचीन सम्पत्तियों का विक्रय (Sale of Obsolete Assets) –

बेकार के अप्रयुक्त स्थायी सम्पत्तियों को बेचकर भी कार्यशील पूंजी की व्यवस्था की जा सकती है।प्रबन्धन इस साधन पर कम ही निर्भर रह सकता है। क्योंकि यह सामयिक, अनियमित और अविश्वसनीय होता है।

5. दीर्घकालीन ऋण (Long Term Loans) –

बैंकों, विनियोग कम्पनियों व विशिष्ट वित्तीय संस्थाओं से दीर्घकालीन

ऋण प्राप्त करके भी कार्यशील पूंजी का वित्तीयन किया जा सकता है। भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI), राज्य वित्त निगमों (SFCs), भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI), नाबार्ड (NABARD) आदि इसके उदाहरण है।

(ब) अल्पकालीन साधन (Short term Sources) –

अल्पकालीन साधनों से अस्थायी कार्यशील पूंजी की व्यवस्था की जाती है। जिसकी लागत भी अपेक्षाकृत कम होती है। प्रमुख अल्पकालीन साधन निम्नलिखित है–

1. वाणिज्यिक बैंक (Commercial Bank) –

अल्पकालीन कार्यशील पूंजी के सबसे महत्वपूर्ण स्रोत वाणिज्यिक बैक होते हैं। बैंक सामान्यतया अग्र चार रूपों में ऋण प्रदान करते हैं।

अ. नकद साख (Cash credit) –

इस व्यवस्था के अन्तर्गत बैंक तथा ग्राहक के मध्य एक औपचारिक समझौता होता है जिसमें साख की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दी जाती है। ग्राहक निर्दिष्ट सीमा के भीतर आवश्यकतानुसार राशि का आहरण कर सकता है। ब्याज आहरित किए गये ऋण पर ही लगता है न कि सम्पूर्ण अधिकतम सीमा पर ।

ब. बैंक अधिविकर्ष –

अधिविकर्ष बैंक के साथ की गई ऐसी व्यवस्था है जिसमें चालू खाता के ग्राहक अपने खाते में जमा शेष के अतिरिक्त एक निर्धारित सीमा तक धन के आहरण की स्वीकृति बैंक से लेता है। इससे ग्राहक चेक अनादृत होने पर उत्पन्न विषम स्थिति से बच जाता है और कुछ समय के लिए ऋण सुविधा भी मिल जाती है। व्यवहार में नकद साख और बैंक अधिविकर्ष में कोई खास अन्तर नहीं होता है लेकिन इतना अवश्य है कि अधिविकर्ष अति अल्पकाल के लिए स्वीकृत किया जाता है और यह एक अस्थायी व्यवस्था (Short-gap arrangement) होती है जबकि नकद साख अपेक्षाकृत अधिक अवधि के लिए स्वीकृत होता है।

स. सुरक्षित ऋण (Secured Loans) –

बैंक जब सम्पत्तियों की जमानत के आधार पर एकमुश्त अग्रिम देता है तो उसे सुरक्षित ऋण कहते हैं। प्रायः बैंक बॉण्डस, रहतिया व व्यक्तिगत जमानत

के आधार पर इस प्रकार का अल्पकालीन ऋण देती है। ऋण की वापसी एकमुश्त या किस्तों में की जा सकती है।

द. बिलो की कटौती (Discounting of Bills) –

इसमें ग्राहक बैंक को अपने प्राप्य बिलों की अपेक्षाकृत कम मूल्य पर बेच देते हैं अथवा वर्तमान ब्याज की दर पर कटौती करा लेता है। परिपक्वता की तिथि पर बैंक सम्बद्ध पक्ष से बिल का पूर्ण अंकित मूल्य प्राप्य कर लेता है। इस प्रकार ग्राहक कटौती की धनराशि की हानि उठाकर आवश्यकतानुसार वित्त प्राप्त कर लेता है।

2. व्यापार साख (Trade Credit) –

प्रायः सभी व्यावसायिक इकाइयों को माल विक्रेता से अल्पकाल के लिए अपनी ख्याति के अनुसार उधार मिल जाता है जिसका भुगतान बाद में एकमुश्त या किश्तों में किया जाता है। कभी–कभी इस उधार माल के लिए विपत्र, प्रतिज्ञा–पत्र, हुण्डी, आदि लिख दिए जाते हैं। इस विधि में उधार पर ब्याज नहीं दिया जाता हैं परन्तु बहुधा विक्रेता माल की कीमत बढ़ा करके ही बेचता है। इस प्रकार अधिक कीमत लेकर ब्याज की पूर्ति कर ली जाती है। व्यापार साख की अवधि प्रायः 15 दिन से 3 माह तक की होती है।

3. देशी साहूकार (Indigenous Moneylenders) –

छोटे तथा मध्यम आकार के उपक्रम अपनी कार्यशील पूँजी का महत्वपूर्ण हिस्सा देशी साहूकारों से प्राप्त करते हैं। ये लोग ब्याज की दर अधिक वसूल करते हैं अतः इनकी शरण में व्यावसायिक गृह अन्त में ही जाते हैं। आजकल वाणिज्यिक बैकों का प्रचलन बढ़ने से देशी साहूकारों की महत्ता दिन प्रतिदिन घट रही है।

4. जन निक्षेप (Public Deposits) –

मुम्बई एवं अहमदाबाद की सूती वस्त्र मिलों में जन निक्षेप कार्यशील पूंजी का प्रचलित स्रोत रहे हैं। वर्तमान में निजी व सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनिया इस साधन का प्रयोग निरन्तर कर रही हैं। इसमें जनता अपना धन तब तक कम्पनियों के पास जमा रखती है जब कि उन्हें ब्याज मिलता है। यह साधन कम्पनियों के लिए सुखद समय का साथी (Fair Weather Friend) सिद्ध होता है और संकट की स्थिति में जमाकर्ता वापसी की माग कर सकते हैं।

5. ग्राहकों से अग्रिम (Advances from Customers) –

कुछ व्यावसायिक गृह अपने ग्राहकों से माल के आदेश के साथ सम्पूर्ण या आंशिक भुगतान अग्रिम में प्राप्त कर लेते हैं जो कार्यशील पूंजी का अल्पकालीन साधन होता है । यह पूँजी प्राप्त करने का लागत विहीन साधन है क्योंकि इस पर कोई ब्याज नहीं देना पड़ता है। परन्तु प्रायः एकाधिकारी संस्थाएँ ही इस साधन को प्रयोग करने की स्थिति में होती है जहाँ पर ग्राहक कोई भी शर्त स्वीकार करने का बाध्य होता है। प्रतिस्पर्धी वातावरण में और जिस संस्था की साख निर्बल हो, इस साधन का सहारा नहीं ले सकती है।

6. आन्तरिक साधन (Internal Sources) –

कार्यशील पूँजी के लिए ह्रास कोष, करों के लिए प्रावधान व उपार्जित व्यय जैसे आन्तरिक साधनों का भी उपयोग किया जा सकता है। लाभ में से कुछ भाग निकालकर बनाए गये ह्रास कोष उस समय तक कार्यशील पूँजी प्रदान करते हैं जब तक कि कोई स्थायी सम्पत्ति न क्रय की जाए अथवा लाभांश के रूप में वितरित न किया जाये। इसी तरह करों के लिए जो प्रावधान किया जाता है वह एक निश्चित अन्तराल पर भुगतान किया जाता है। इस बीच की अवधि में यह अल्पकालीन कार्यशील पूंजी के रूप में प्रयुक्त होता है। उपार्जित व्ययों की राशि भी भुगतान होने तक अल्पकालीन साधन होते हैं।

7. अन्य साधन (Other Sources) –

कुछ अन्य साधन हैं – (अ)– सरकारी सहायता, (ब)– प्रबंधकों व संचालकों के ऋण (स)– कर्मचारियों की प्रतिभूतियाँ।

2.7 सारांश

संस्था के दैनिक कार्यों को सुचारू ढंग से सम्पन्न करने तथा संस्था की साख को निरन्तर बनाये रखने के लिए कार्यशील पूँजी आवश्यक है। इसमें रोकड़ प्रबन्ध प्रार्थी का प्रबन्ध एवं रहतिया प्रबन्ध सम्मिलित किया जाता है। वित्त प्रबन्धक के द्वारा कार्यशील पूंजी प्रबन्ध के अन्तर्गत चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों के मध्य उचित सामन्जस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है।

कार्यशील पूंजी से आशय समस्त सम्पत्तियों के उस भाग से है जो व्यवसाय संचालन में एक स्वरूप से दूसरे स्वरूप में परिवर्तित होती रहती है।

किन्तु इस शाब्दिक अर्थ से सभी एकमत नहीं हैं। कार्यशील पूँजी के वास्तविक अभिप्राय से सम्बन्ध में वित्तीय प्रबन्धकों लेखापालकों, उपकृमियों और अर्थशास्त्रियों में पर्याप्त मतभेद हैं। कुछ विद्वान चालू सम्पत्तियों के योग को कार्यशील पूँजी मानते हैं जबकि अन्य चालू दायित्वों के ऊपर चालू सम्पत्तियों के अधिक्य को ही कार्यशील पूँजी कहते हैं इसके अतिरिक्त विद्वानों का एक ऐसा वर्ग भी है जो इसे कार्यशील पूँजी के नाम से पुकारने को तैयार नहीं है और वे इसे सक्रिय पूँजी कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं।

2.8 शब्दावली

1. **सकल कार्यशील पूँजी** – सम्पूर्ण चालू सम्पत्तियों के योग को सकल कार्यशील पूँजी कहते है। और यह कार्यशील पूँजी की परिणात्मक अवधारणा है।

2. **स्थिर कार्यशील पूँजी** – व्यवसायिक संस्था में चालू सम्पत्तियों की एक न्यूनतम मात्रा बनी रहे और इस न्यूनतम मात्रा को ही स्थिर कार्यशील पूँजी कहते हैं।

3. **परिवर्तनशील कार्यशील पूँजी** -- व्यवसाय की आकस्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जो अतिरिक्त पूंजी रखीं जाती है। उसे परिवर्तनशील कार्यशील पूँजी कहते हैं।

4. **चालू सम्पत्तियॉ** – ऐसी सम्पत्तियाँ जो व्यवसाय के चालू कार्यों के लिए प्रयोग में लाई जाती हैं। चालू सम्पत्तियाँ कहलाती हैं।

2.9 स्व–परक प्रश्न

1. कार्यशील पूँजी से आप क्या समझते हैं? कार्यशील पूँजी की विभिन्न अवधारणाओं का वर्णन कीजिए।

2. "अपर्याप्त कार्यशील पूँजी संकटपूर्ण स्थिति की प्रतीक होती है, जबकि आवश्यकता से अधिक अथवा फालतू कार्यशील पूँजी दण्डनीय अपव्यय की प्रतीक मानी जाती है।" इस कथन के सन्दर्भ में कार्यशील पूंजी का विश्लेषण कीजिए।

3. कार्यशील पूँजी का अर्थ एवं इसे निर्धारित करने वाले तत्वों को स्पष्ट कीजिए।

इकाई – 3 कार्यशील पूंजी का अनुमान (Estimation of Working Capital)

इकाई की संचरना

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 कार्यशील पूंजी का अनुमान

3.4 कार्यशील पूंजी के अनुमान की विधियॉ

3.5 सारांश

3.6 शब्दावली

3.7 स्व–परक प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त इस योग्य हो सकेंगे कि –

- कार्यशील पूँजी का अनुमान लगा सकें।
- कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाने वाली विधियों का विश्लेषण कर सकें।
- अनुमान लगाने वाली विधियों के माध्यम से कार्यशील पूँजी की गणना कर सकें।
- भविष्य की कार्यशील पूँजी की आवश्यकता का निर्धारण कर सकें।
- पूँजी बजटन की विधियों की व्याख्या कर सकें।

3.2 प्रस्तावना

संगठन एवं कम्पनी के लिए कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाना कठिन कार्य है लेकिन आवश्यकता आविष्कार की जननी है। इस आधार पर प्रत्येक संगठन एवं कम्पनी अपनी भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्यशील पूँजी का अनुमान विभिन्न विधियों के माध्यम से निर्धारित करती है। प्रस्तुत इकाई में कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाने वाली विभिन्न विधियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया।

3.3 कार्यशील पूँजी का अनुमान

एक व्यवसायिक संस्था के सफल संचालन के लिए कार्यशील पूँजी का निर्धारण करना अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है। संस्था की कार्यशील पूँजी का निर्धारण करने के लिए कार्यशील पूँजी का अनुमान लगाना आवश्यक है। प्रायः संस्था के लिए वित्त की प्राप्ति विभिन्न गणनाओं पर आधारित रहती है। अतः कार्यशील पूँजी का अनुमान संस्था का मुख्य उद्देश्य होता है जिससे वित्तीय स्त्रोतों में उचित तरलता बनाए रखी जा सके।

3.4 कार्यशील पूँजी के अनुमान की विधियाँ (Methods of Estimation of Working Capital)

किसी भी व्यवसायिक उपक्रम में व्यवसाय के विशेष स्तर के लिए कार्यशील पूँजी की आवश्यकता का पूर्वानुमान लगाना एक महत्वपूर्ण व्यावहारिक समस्या है जो प्रत्येक वित्तीय प्रबन्धक के सामने आती है इसके लिए निम्न में से कोई भी रीति प्रयोग में लाई जा सकती हैं।

1. परिचालन चक्र रीति
2. चालू सम्पत्तियों एवं दायित्वों की पूर्वानुमान रीति
3. रोकड़ पूर्वानुमान रीति
4. प्रक्षेपी आर्थिक चिट्ठा रीति
5. लाभ–हानि समायोजन रीति

1. परिचालन चक्र रीति –

परिचालन अथवा संचालन चक्र विधि के द्वारा संस्था की रोकड़ कार्यशील पूँजी का पूर्वानुमान लगाया जाता है। इस विधि के अनुसार कार्यशील पूंजी का निर्धारण किसी अवधि विशेष के कुल परिचालन व्ययों में उस अवधि विशेष में पूरी की गई परिचालन चक्र की संख्या का भाग देकर ज्ञात किया जाता है। रोकड़ से कच्चा माल, कच्चा माल से निर्मित माल, निर्मित माल से देनदार व प्राप्य बिल, से रोकड़ की वसूली यही परिचालन चक्र होता है। अतः कार्यशील पूंजी की मात्रा का अनुमान लगाने के लिए कुल परिचालन व्यय, परिचालन चक्र अवधि तथा वर्ष के परिचालन चक्रों की कुल संख्या की गणना आवश्यक है, जो संक्षेप में इस प्रकार की जाती है –

NMDC-131

क. परिचालन व्यय –

किसी अवधि के परिचालन व्ययों में उस अवधि की सामग्री क्रय, शक्ति व ईधन निर्माणी व्यय, प्रशासनिक व्यय, विक्रय व वितरण व्यय, आदि को शामिल करते हैं। इन व्ययों में गैर नकद व्ययों जैसे, ह्रास अमूर्त सम्पत्तियों का अपलेखन, आदि को सम्मिलित नहीं करते हैं साथ ही अगर उत्पादन मिश्रण में परिवर्तन, मूल्य स्तर में परिवर्तन आदि के फलस्वरूप व्ययों में होने वाले अन्तर को समायोजित कर लिया जाता है।

ख. परिचालन चक्र की अवधि –

परिचालन चक्र की अवधि के दिनों की गणना कच्ची सामग्री के संग्रहण उत्पादन प्रक्रिया, तैयार माल के संग्रहण तथा देनदारों से औसत वसूली की अवधि के योग में से लेनदारों को भुगतान की अवधि को घटा करके की जाती है।

इसके सूत्र निम्न हैं –

1. $$Raw\ Material\ Storage\ Period = \frac{Average\ Stock\ of\ Materials}{Daily\ Average\ Consumption}$$

2. $$Production\ Process\ Period = \frac{Average\ Stock\ of\ Work\ in\ Progress}{Total\ Factory\ Cost\ /\ 365}$$

3. $$Finished\ Goods\ Storage\ Period = \frac{Average\ Stock\ of\ Finished\ Goods}{Cost\ of\ Goods\ Sold\ /\ 365}$$

4. $$Average\ Collection\ Period\ from\ Debtors = \frac{Average\ Debtors + Bills\ Receivable}{Total\ Credit\ Sales\ /\ 365}$$

5. $$Average\ Payment\ Period\ to\ Creditors = \frac{Average\ Creditors + Bills\ Payable}{Total\ Credit\ Purchases\ /\ 365}$$

उपरोक्त 1 से 5 तक के योग की अवधि में से 5 घटा देने पर परिचालन चक्र की अवधि दिनों में ज्ञात हो जाती है।

ग. वर्ष के परिचालन चक्रों की कुल संख्या

यह गणना वर्ष के कुल दिनों अर्थात 365 में परिचालन चक्र की अवधि का भाग देकर ज्ञात की जाती है।

$$Total\ No.of\ Operating\ Cycles\ in\ the\ year = \frac{365}{Period\ of\ Operating\ Cycle}$$

घ. कार्यशील पूँजी की धनराशि –

वर्ष के परिपालन व्यय में वर्ष के परिचालन चक्रों की कुल संख्या से भाग देकर कार्यशील पूँजी की गणना की जाती है सूत्र रूप में।

$$Working\ Capital = \frac{Total\ Operating\ Expenses}{Total\ No.of\ Operating\ Cycles\ in\ the\ Year}$$

ङ आकस्मिकताओं के लिए प्रावधान–

उपरोक्त प्रकार से आगणित कार्यशील पूँजी में आकस्मिकताओं के लिए कुछ और राशि जोड़ दी जाती है। ऐसा इसलिए किया जाता है, क्योंकि उपर्युक्त सभी गणनाएं पूर्णतया शुद्ध न हो तब भी कार्यशील पूँजी पर्याप्त रहे। अतः अनुमानों में सम्भावित को दूर करने के लिए आकस्मिकताओं का प्रावधान किया जा सकता है।

Example :1

एक्स लिमिटेड की आवश्यक कार्यशील पूंजी की गणना कीजिए –

1. अनुमानित वार्षिक बिक्री 10,000 इकाइयां 4 रू. प्रति इकाई की दर है।
2. उत्पादन एवं बिक्री की मात्राएं मेल खाती है। और वर्ष पर्यन्त समान रूप से जारी रहती हैं।
3. उत्पादन लागत इस प्रकार है सामग्री 2.00 रू. प्रति इकाई, श्रम 1.00 रू. प्रति इकाई, उपरिव्यय 10,000 रू. ।
4. ग्राहकों को 50 दिन की उधार दी जाती है और आपूर्तिकर्ताओं से 40दिन की उधार प्राप्त होती है।
5. कच्चे माल की 40 दिन की पूर्ति तथा तैयार माल की 15 दिन की पूर्ति भण्डार में रखी जाती है।
6. उत्पादन चक्र 20 दिन का है तथा उत्पादन चक्र के प्रारम्भ में ही सामग्री का निर्गमन कर दिया जाता है।
7. अन्य औसत कार्यशील पूँजी का एक चौथाई हिस्सा आकस्मिकताओं के लिए नकद रूप में रखा जाता है।

Solution,

(a)	Total operating expenses for the year	Rs.	
	Raw Material (10,000 units @ Rs. 2.00)	20,000	
	Labour (10,000 Units @ 1 Rs.)	20,000	
	Overheads	10,000	
		50,000	
(b)	Period of Operating Cycle	Days	
	i) Material Storage cycle		40
	ii) Finished goods storage period		15
	iii) Production cycle period		20
	iv) Average Collection period		125
	Less: Average payment period		40
(c)	No.of operating cycle in the year = 365/85=4.3	Rs.	
(d)	Working Capital (Rs. 50,000/4.3)		
	Total working capital required	11,627.90	
	Add: Reserve for Contingencies (1/4)	2906.97	
		14534.87	

2. चालू सम्पत्तियों एवं दायित्वों की पूर्वानुमान रीति (Forecasting of Current Assets and Liabilities Method) –

चालू सम्पत्तियों एवं चालू दायित्वों का पूर्वानुमान विधि कार्यशील पूँजी के अनुमान की वर्तमान में सर्वाधिक प्रचलित रीति है। इस रीति को अपनाने का सुझाव सन् 1975 में प्रकाश टण्डन समिति ने भी दिया था तथा विभिन्न व्यापारिक बैंक, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक व भारतीय औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम इस रीति को प्रयोग कर रहे हैं। इस रीति के अनुसार हम आगामी अवधि में होने वाले लेन देनों के आधार पर चालू सम्पत्तियों की रोकड़ लागत अनुमानित कर लेते हैं और इसी प्रकार चालू दायित्वों का भी अनुमान लगा लेते हैं। चालू सम्पत्तियों में से चालू दायित्वों को घटा देने पर कार्यशील पूंजी की मात्रा अनुमानित हो जाती है। अगर कार्यशील पूँजी का अर्थ चालू सम्पत्तियों से लगाया गया हो तो चालू सम्पत्तियों के अनुमानित मूल्य को ही कार्यशील पूँजी मान लिया जाता है।

वित्तीय एवं व्यापारिक संस्थाएँ निर्धारित प्रारूप में कार्यशील पूँजी का अनुमान इस नमूने के आधार पर लगाती हैं –

Statement of working requirement

Current Assets		Rs.
1.	Cash	.....
2.	Debtor or Receivables	.....
3.	Advance payments	.....
4.	Stock	.....
5.	Others	.....
	Total of current assets	.....
Less: Current liabilities		
1.	Creditors	.....
2.	Outstanding of expenses	.....
Working capital (CA - CL)		.....
Add: Provision for contingencies		.....
Net working capital Required		.....

Example : 1,

एक्स लिमिटेड की गणना हेतु निम्न सूचनाए उपलब्ध हैं –

1) विगत वर्ष में उत्पादन 2,00,000 इकाइयों का था और इस वर्ष भी इसी उत्पादन स्तर को बनाये रखना प्रस्तावित हैं।

2) लागत तालिका के अनुसार सामग्री लागत 60 प्रतिशत, श्रम 30 प्रतिशत और उपरिव्यय 20 प्रतिशत विक्रय मूल्य का है।

3) कच्ची सामग्री उत्पादन हेतु निर्गमन से पूर्व एक माह तक भण्डार में रहने की सम्भावना है।

4) तैयार माल औसतन दो माह तक गोदाम में रहता है।

5) उत्पादन की प्रत्येक इकाई को एक माह औसतन उत्पादन प्रक्रिया में रहने की सम्भावना है।

6) कच्ची सामग्री की सुपुर्दगी की तिथि से आपूर्तिकर्ताओं द्वारा एक माह की उधार स्वीकृत की जाती है।

7) विक्रय की तिथि से देनदारी को दो माह की उधार दी जाती है।

8) मजदूरी का भुगतान एक माह बाद किया जाता है।

9) विक्रय मूल्य प्रति इकाई 9 रू. है।

10) उत्पादन व विक्रय चक्र नियमित रूप से जारी रहता है।

Solution

Statement of working capital estimates

		Rs.	Rs.
(A)	Current Assets :		
	Debtors (2 months)		
	Materials (90000 x 2)	180000	
	Labour (45000 x 2)	90000	
	Over head (30000 x 2)	60000	330000
	Stocks		
(a)	Raw materials (1 month)	90000	
(b)	Work in progress (1 month)		
	Materials	90000	
	Labour	45000	
	Overhead	30000	
(c)	finished goods (2 months)		
	Materials	180000	
	Labour	90000	
	Overhead	60000	585000
(B)	Current Liabilities		
	Creditors for Raw Materials	90000	
	Outstanding wages	45000	135000
	Working capital (A-B)		450000

Working notes :

Amount Locked up in Materials, Labour and Overhead p.m.:

1. Sales for one month = Rs. 1800000 x 1/12 = Rs. 150000

2. Material cost for one month; 60% of Rs. 150000 = Rs. 90000

3. Labour cost for one month =30% of Rs. 150000 = Rs. 45000

4. Overhead cost for one month =20% of Rs. 50000= Rs. 7,500

3. रोकड़ पूर्वानुमान रीति (Cash Forecasting method) -

इस विधि के अन्तर्गत अवधि के आरम्भ में रोकड़ शेष को आधार मानते हुए उस अवधि में होने वाली संभावित आय एवं व्यय की मदों का पूर्वानुमान

लगाकर रोकड़ शेष का निर्धारण किया जाता है। जो रोकड़ आधिक्य या कमी को दर्शाता है। इस रीति में आगामी अवधि की प्राप्तियों एवं भुगतानों को अनुमानित किया जाता है और इनके अन्तर से रोकड़ की कमी या आधिक्य प्राप्त हो जाता है। रोकड़ की कमी का अर्थ प्रबन्धन किसी न किसी स्रोत से किया जाता है। वस्तुतः यह रीति रोकड़ बजट की होती है।

Example - 1,

एक्स कम्पनी के 31 दिसम्बर 2008 को समाप्त होने वाली तिमाही का कार्यशील पँजी के अर्थ प्रबन्धन हेतु आवश्यक रोकड़ राशि का अनुमान लगाइये।

1. विक्रय का 50 प्रतिशत नकद में होता है उधार विक्रय का 80 प्रतिशत विक्रय के अगले महीने में और शेष एक माह बाद वसूल होता है।

विक्रय आंकड़े इस प्रकार हैं : अगस्त 75,000 रू.सितम्बर 60,000 रू., अक्टूबर से दिसम्बर 80,000 रू. प्रति माह।

2. 5 प्रतिशत नकद कटौती प्राप्त करने के लिए माल सदैव नकद क्रय किये जाते हैं। अन्तिम तिमाही (अक्टूबर से दिसम्बर) का क्रय बजट 40,000 रू. प्रतिमाह है।

3. अन्तिम तिमाही में मजदूरी और वेतन बजट 10,000 रू. प्रतिमाह है।

4. तिमाही के निर्माणी व अन्य व्यय का बजट इस प्रकार है। निर्माणी व्यय 13500 रू. ह्रास 18000 रू. विक्रय व्यय 9000 रू.प्रशासनिक व्यय (केवल अक्टूबर एवं दिसम्बर में) 5000 रू. प्रतिमाह।

5. अक्टूबर माह में एक पुरानी मशीन 50,000 रू. के अतिरिक्त रोकड़ खर्च द्वारा प्रतिस्थापित होनी है।

Solution,

Statement of Cash Estimates

(For the quarter ending on 31st dec. 2008)

	Months		
	October	November	December
Cash Inflow			
1. Opening Balance	-	39000	16500
2. Cash sales	40000	40000	40000

3. Collection from Debtors	31500	38000	40000
Total :	71500	39000	63500
Cash outflow			
1. Cash purchases (less discount)	38000	38000	38000
2. Wages and salaries	10000	10000	10000
3. Manufacturing Expenses	4500	4500	4500
4. Selling expenses	3000	3000	3000
5. Administrative Expenses	5000	-	5000
6. Replacement of Machine	50000	-	-
Total :	110500	55500	60500
Closing Balance	-39000	-16500	3000

Working notes:

1. अक्टूबर माह में रोकड़ का प्रारम्भिक शेष न दिया होने के कारण शून्य माना गया है।

2. ह्रास रोकड़ व्यय न होने के कारण छोड दिया गया है।

3. देनदारों से रोकड़ वसूली की गणना इस प्रकार की गई है।

	अगस्त	सितम्बर	अक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर
उधार विक्रय (विक्रय का 50 प्रतिशत)	37500	30000	40000	40000	40000
देनदारों से गत माह के उधार विक्रय का 80 प्रतिशत	–	30000	24000	32000	32000
देनदारों से गत दो माह के उधार विक्रय का 20 प्रतिशत	–	–	7500	6000	8000
कुल योग –	–	30000	31500	38000	40000

4. प्रक्षेपी वार्षिक चिट्ठा रीति (Projected Balance Sheet Method)-

इस विधि के अन्तर्गत आगामी अवधि में होने वाले लेन–देनों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों (रोकड़ को छोड़कर) और दायित्वों का अनुमान लगा लिया जाता है। इन अनुमानों में प्रक्षेपी आर्थिक चिट्ठा बना लेते हैं। इस चिट्ठे से सम्पत्तियों एवं दायित्वों का अन्तर उस अवधि की कार्यशील पूंजी मान लिया जाता है। यदि दायित्व पक्ष का योग सम्पत्ति पक्ष से अधिक आये

तो यह रोकड़ आधिक्य को प्रदर्शित करता है जिसकी आवश्यकता संस्था को नहीं होगी। इस अतिरिक्त रोकड़ के विनियोजन की योजना प्रबन्धन तैयार कर सकता है। इसके विपरीत यदि सम्पत्ति पक्ष का योग दायित्त्व पक्ष से अधिक आये तो यह कार्यशील पूंजी की कमी को व्यक्त करता है जिसकी व्यवस्था प्रबन्धन को करनी चाहिए।

Example : 1,

वाय लिमिटेड की अंश पूंजी 5,00,000 रू.तथा संचय 1,00,000 रू. है, 2,60,000 रू. स्थायी सम्पत्तियों में विनियोजित है, रहतिया तथा देनदार क्रमशः 65,000 रू. तथा 2,00,000 रू. के थे और लेनदार 30,000 रू. थे। व्यावसायिक क्रिया में वृद्धि को जारी रखने के लिए वर्ष के अन्त तक रहतिया के स्तर में 50 प्रतिशत वृद्धि का प्रस्ताव है। पूंजी अधिग्रहण बजट के अनुसार 20,000 रू. की मशीन वर्ष में खरीदने का प्रस्ताव है। 60,000 रू. ह्रास व लाभ का 50 प्रतिशत कर के लिए प्रावधान करने के बाद वर्ष का अनुमानित लाभ 1,05,000 रू. है। अग्रिम आय का भुगतान का अनुमान 90,000 रू. है। लेनदार दुगुने होने की सम्भावना है। 5 प्रतिशत लाभांश चुकता करना है। तथा अगले वर्ष के लिए 10 प्रतिशत लाभांश का प्रस्ताव है। देनदार 4 माह तक बकाया रहने का अनुमान है। विक्रय बजट के अनुसार वर्ष का विक्रय 15,00,000 रू. है। दिसम्बर 2008 को प्रक्षेपी आर्थिक चिट्ठा बनाकर कार्यशील पूंजी आवश्यकता का अनुमान लगाइये।

Solution

Projected Balance Sheet of Y Ltd.

(As on 31st December, 2008)

Liabilities		Amount	Assets		Amount
Share Capital		500000	Fixed Assets		
			Balance	260000	
Reserve & Surplus:			Add. Purchase	20000	
Balance	100000			280000	
Less:Dividend	40000		Less.Dep.	60000	220000
	60000				
Add: profit after					
Tax	105000				
	165000				

NMDC-131

Less: Proposed Dividend	85000		
Current liabilities:		Current Assets:	
Creditors	60000	Stock	97500
Provision for Tax	105000	Debtors (1500000x4)	500000
Proposed Dividend	80000	Advance Income Tax	90000
Overdraft (Balancing Figure)	77500		
	9,07,500		9,07,500

Working capital (Overdraft) = 9,07,500-8,30,000 = Rs. 77,500

Stock = 65,000+50% of Rs. 65000 = Rs. 97,500

Debtors = 15,00,000 x 4/2 - Rs. 5,00,000

5. लाभ हानि समायोजन रीति (Profit and Loss Adjustment Method)–

इस रीति के अन्तर्गत आने वाले अवधि के लिए आवश्यक कार्यशील पूंजी का अनुमान लगाने हेतु विभिन्न लेन–देनों का पुर्वानुमान लगाया जाता है। इस प्रकार ज्ञात किये गये शुद्ध लाभ में गैर रोकड़ मदें सम्मिलित रहती हैं। इसलिए कार्यशील पूंजी की गणना करते समय इनका समायोजन किया जाता है।

Example : 1,

एक्स कम्पनी का बजटेड लाभ हानि खाता निम्न प्रकार है।

	Rs.		Rs.
The depreciation	20000	By Gross Profit	210000
To selling expenses	10000	By Interest	15000
To Income Tax	1000		
To interest charges	4000		
To loss on sale of plant	10000		
To net profit c/d	180000		
	2,25,000		2,25,000
To dividend	30000	By Net profit	180000
To Balance C/d	150000		
	1,80,000		1,80,000

अतिरिक्त सूचना :

वर्ष के दौरान 60,000 रू. को लागत का एक नया प्लान्ट खरीदना है।

70,000 रू. की लागत का पुराना प्लाण्ट जिस पर 32,000 रू. एकत्रित ह्रास है को 25000 रू. में बेचे जाने की सम्भावना है।

वर्ष के दौरान 20,000 रू. के ऋण पत्र शोधन हेतु परिपक्व होंगे।

40,000 रू. के समता अंश नकद रूप में निर्गमित किए जायेंगे। कार्यशील पूंजी में वृद्धि या कमी की राशि लाभ हानि समायोजना रीति से निर्धारित कीजिए।

Solution,

	Rs.	Rs.
Net Profit as per P & L A/c		180000
Add: Non cash charges		
Depreciation	22000	
Loss on sale of plant	13000	35000
		215000
Working capital provided by Operations		
Add: Cash inflows		
Issue of Fresh shares	40000	
Sale of plant	25000	65000
		280000
Less: Cash outflows		
Redemption of debentures	20000	
Purchase of Plant	60000	
Payment of dividend	30000	110000
Net increase in working capital		170000

3.5 सारांश

उपरोक्त विभिन्न विधियों का अध्ययन करने के पश्चात सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि कार्यशील पूंजी के पूर्वानुमान के लिए इन तकनीकियों

की एक वित्तीय प्रबन्धक को वर्तमान प्रतिस्पर्धी युग में जानकारी रखना बहुत महत्वपूर्ण है। बिना इन तकनीकियों के एक वित्तीय प्रबन्धक आज के इस गला–काट प्रतिस्पर्धी युग में व्यवसाय चलाने में अक्षम होगा। कार्यशील पूर्वानुमान की यह विधियां आवश्यकतानुसार भविष्य की जानकारी वर्तमान में निश्चित कर देती है जिससे व्यवसाय संचालन में आसानी होती है।

3.6 शब्दावली

- **संचालन चक्र रीति** : 1. संचालन चक्र की अवधि, संचालन की विभिन्न अवस्थाओं की अवधि में आपूर्ति दाता द्वारा स्वीकृत अवधि का समायोजन करके ज्ञात की जाती है।
- **संचालन व्यय** : अवधि के कुल संचालन व्यय में उस अवधि में किये गये सामग्री व्यय निर्माणी व्यय, प्रशासनिक व्यय, विक्रय विवरण व्यय (गैर नगद खर्चों को छोड़कर) शामिल करते हैं।
- **रूंपान्तरण अवधि** : जितनी अवधि में कच्चा माल निर्मित माल में परिवर्तित होता है उसे रूपान्तरण अवधि कहते हैं।
- **औसत वसूली अवधि** : देनदारों से नगद रूपया प्राप्त होने में जितनी अवधि लगती है।
- **औसत भुगतान अवधि** : लेनदारों के नकद भुगतान करने में जितनी अवधि लगती है। उसे औसत भुगतान अवधि कहते हैं।

3.7 स्व–परक प्रश्न

1. कार्यशील पूंजी पूर्वानुमान से क्या आशय होता है? इस प्रकार के अनुमान में प्रयुक्त विधियों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

2. कार्यशील पूंजी के विश्लेषण से आप क्या समझते है। इस प्रकार के विश्लेषण में प्रयोग की जाने वाली विभिन्न विधियों की विवेचना कीजिए।

3. कार्यशील पूंजी के पूर्वानुमान रीतियों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए और विशेष रूप से परिचालन चक्र रीति को समझाइये।

इकाई – 4 स्कन्ध एवं प्राप्य बिलों का प्रबन्ध (Inventory & Receivables Management)

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 स्कन्ध का प्रबन्ध

4.4 प्राप्य बिलों का प्रबन्ध

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 स्व–परक प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- स्कन्ध का अर्थ बता सकें।
- स्कन्ध का प्रबन्ध कर सकें।
- प्राप्य बिलों का अर्थ बता सकें।
- प्राप्य बिलों का प्रबन्ध कर सकें।
- स्कन्ध एवं प्राप्य बिलों की भूमिका का एक संगठन में महत्व बता सकें।
- स्कन्ध एवं प्राप्य बिलों की गणना कर सकें।

4.2 प्रस्तावना

स्कन्ध एवं प्राप्य बिलों का प्रबन्ध कम्पनियों के लिए एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिसके आधार पर कम्पनी की आंतरिक व्यवसायिक क्षमता का आंकलन किया जा सके। प्रस्तुत इकाई में स्कन्ध एवं प्राप्य बिलों की क्रमानुसार व्याख्या की गई है। यह तो निर्विवाद सत्य है कि स्कन्ध का आशय भौतिक सत्यापन से होता है जिसमें गणना प्रधान क्रिया मानी जाती है इसके साथ प्राप्यों को विनियोग के रूप

में माना जाता है। अर्थात प्राप्यों में कुछ अवधि के लिए धनराशि फंस जाती है । दोनों ही एक संगठन के लिए महत्वपूर्ण हैं जिनकी व्याख्या की गई है।

4.3 स्कन्ध का प्रबन्ध (Inventory management)

स्कन्ध का आशय स्कन्ध के भौतिक सत्यापन से होता है जिसमें गणना प्रधान क्रिया मानी जाती है। परन्तु आजकल इसका अर्थ व्यापक रूप से लगाया जाता है। स्कन्ध में विभिन्न वस्तुओं की रखी गयी मात्रा से होता है अर्थात यदि तैयार माल का स्कन्ध उचित है तो ग्राहकों की सेवा उचित ढंग से की जा सकेगी। स्कन्ध अथवा रहतिया किसी भी संस्था के उत्पादन तथा विक्रय के मध्य सम्पर्क सेतु का कार्य करता है और इसीलिए यह चालू सम्पत्तियों में सर्वाधिक अहम होता है। कार्यशील पूंजी में स्कन्ध का अनुपात 30 प्रतिशत से 80 प्रतिशत तक हुआ करता है और इसमें पर्याप्त पूंजी का निवेश होता है। संस्था के परिचांलन में लाभदायकता और निरन्तरता बनाये रखने के लिए स्कन्ध का उचित नियोजन नियन्त्रण एवं प्रबन्ध अति आवश्यक है। इसी कारण से यह कहा जाता है कि यदि प्रबन्धक को धन की आवश्यकता हो तो सर्वप्रथम रहतिया को देखना चाहिए।

स्कन्ध प्रबन्ध शब्द दो शब्दों स्कन्ध और प्रबन्ध से मिलाकर बना है। स्कन्ध का आशय ऐसे समस्त माल से होता है जो किसी व्यावसायिक या औद्योगिक उपक्रम के द्वारा अपने सामान्य संचालन हेतु अपने पास रखा जाता है जिसका उद्देश्य उसका विक्रय करना अथवा विक्रय के लिए उत्पादित की जाने वाली वस्तुओं के निर्माण में उसका प्रयोग करना होता है। स्कन्ध की प्रवृत्ति स्थायी न हो करके परिवर्तनशील होती है। स्कन्ध में बहुधा निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है कच्ची सामग्री (Raw Materials), निर्माणाधीन माल (Work in process), निर्मित माल (Finished goods), अन्य माल (Other goods) इसके अन्तर्गत उचित गुणवत्ता वाली सामग्री का न्यूनतम लागत पर अनुकूलतम स्तर बनाये रखनें का प्रयास किया जाता है। यह एक ऐसी प्रणाली है जिसमें वित्तीय कार्याधिकारी उचित गुण की, उचित मात्रा में सामग्री की उचित समय व न्यूनतम लागत पर आपूर्ति सुनिश्चित करता है जिससे कि संस्था की लार्भाजन क्षमता और सम्पत्ति को अधिकतम किया जा सके।

स्कन्ध प्रबन्ध के उद्देश्य (Objectives of Inventory Management) –

1. बिक्री खो जाने की संभावना को दूर रखना।
2. मात्रा छूट का लाभ लेना।
3. आदेश लागत में कमी ।
4. कुशल उत्पादन की प्राप्ति ।
5. उत्पादन की जोखिम को कम करना।
6. फर्म का स्कन्ध में विनियोजन न्यूनतम करना।
7. स्कन्ध के असामान्य क्षयों तथा चोरी को रोकना।
8. निर्मित माल को खत्म हो जाने की सम्भावनाओं की समाप्ति।
9. क्रय में मितव्ययिता लाना।
10. ग्राहकों को श्रेष्ठ सेवा प्रदान करना।
11. कन्धविहीनता से बचना और सामग्री की आपूर्ति सुनिश्चित करना।
12. संस्था की निर्माण कुशलता में वृद्धि लाना।
13. सामग्री के कम प्रयोग में आने वाली व अप्रचलित मदों व स्पष्ट करना।

स्कन्ध में विनियोजित स्तर को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining the investment level in inventory) –

प्रत्येक व्यवसाय की निजी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए स्कन्ध की मात्रा निर्धारित करनी पड़ती है। स्कन्ध की यह मात्रा न तो आवश्यकता से अधिक होनी चाहिए और न आवश्यकता से कम। अर्थात स्कन्ध की मात्रा का आधार अनुकूलतम होना चाहिए।

स्कन्ध में किये जाने वाले विनियोग के स्तर को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते हैं –

1. कच्चे माल की मौसमी प्रकृति (Seasonal Nature of Raw Materials) –

कच्चा माल किसी विशेष मौसम में ही उपलब्ध होता है जबकि संस्था उसका प्रयोग वर्ष–पर्यन्त किया करती है तो मौसम में उस माल को क्रय करके

रखने में अत्यधिक पूंजी विनियोजित करनी पड़ेगी।

2. बड़े पैमाने पर क्रय में बचत (Economy of Large-Scale purchase)–

बचत विशेष रियायती मूल्य, अधिक छूट, परिवहन व्यय में बचत, भुगतान की आसान शर्तें, आदि से प्राप्त हो सकती है। इन सब बचतों से उपक्रम अधिक मात्रा में सामग्री क्रय करने के लिए प्रेरित हो सकता है तब स्कन्ध में विनियोजन अधिक होगा।

3. समय तत्व (Time Factor) –

उपक्रम के कच्चे माल की मण्डी समीप स्थित है और कम समय में ही आपूर्ति हो सकती है तो केवल दो तीन दिन के उत्पादन के लिए कच्चा माल ही स्कन्ध में रखा जाता है और विनियोजन कम होता है।

4. ऋण सुविधाएं (Loan Facilities) –

बहुधा कच्चे माल का क्रय देय बिलों के आधार पर किया जाता है और भुगतान परिपक्वता की तिथि पर करना पड़ता है। फिर कच्चे माल की जमानत पर बैंक व वित्तीय संस्थाओं से ऋण भी मिल जाता है।

5. मूल स्तर में उच्चावचन (Price Level Fluctuation) –

यदि निकट भविष्य में मूल्य वृद्धि की सम्भावना हो तो फर्म अधिक सामग्री खरीद कर संग्रहण करेगी फलतः स्टॉक में विनियोजन अधिक होगा। मूल्य स्तर में गिरावट की सम्भावना होने पर भण्डार में माल रखने की प्रवृत्ति छोड़ने की स्थिति होती है। और स्टॉक में विनियोजन कम होता हैं ।

6. विक्रय की मात्रा (Quantity of Sales) –

अगर फर्म के विक्रय की मात्रा लघु हो तो वह निर्मित माल का भण्डार भी कम रखेगी और विनियोजन का स्तर कम होगा।

7. आपूर्ति दशायें (Supply Conditions) –

यदि कच्चे माल की निरन्तर आपूर्ति निर्बाध ढंग से होंती है तो कम स्टॉक रखने के कारण विनियोजन भी कम होगा।

8. अन्य तत्व Other Factors) –

(1) हड़ताल की आशंका (2) निमित वस्तु का प्रस्तावित नियन्त्रण या

राशनिंग, (3) करों में वृद्धि की सम्भावना, (4) अच्छी या खराब फसल की उम्मीद (5) सरकारी नीति में परिवर्तन (6) बाजार में मन्दी की स्थिति एवं (7) आदि।

स्कन्ध प्रबन्ध के उपकरण एवं तकनीकें (Tools and Techniques of Inventory Management) –

सामान्यतः प्रबन्ध की क्रियाओं का प्रबन्धकीय सिद्धान्तों के आधार पर स्कन्ध के क्षेत्र में सम्पादन ही स्कन्ध प्रबन्ध कहलाता है। स्कन्ध प्रबन्ध की मात्रा व मूल्य सम्बन्धी नियोजन, संगठन, नियंत्रण एवं समन्वय से होता है। यदि स्कन्ध प्रबन्ध के दौरान उत्पन्न समस्याओं का सूक्ष्म अवलोकन किया जाय तो विदित होगा कि मूलतः स्कन्ध प्रबन्ध की समस्या निम्न तकनीकों से सम्बन्धित है।

1. आर्थिक आदेश मात्रा या ई. ओ. क्यू. (Economic Order Quantity or E.O.Q.) –

स्कन्ध के सन्दर्भ में आदेशन से आशय स्कन्ध के किसी मद को बाहर से क्रय करना या संस्था के अन्दर ही निर्माण करना होता है। यह आदेश की वह मात्रा है जिस पर लागत न्यूनतम हो। यदि संस्था चाहे तो वर्ष भर के लिए आवश्यक कच्चा माल एक ही बार में खरीद करके रहतिया में संग्रहण करने का निर्णय ले सकती है। इससे आदेशन लागत (Ordering cost) में तो कमी आएगी परन्तु स्कन्ध रखने की लागत (Inventory Carrying Cost) में वृद्धि हो जाएगी। इसके विपरीत, यदि संस्था छोटी–छोटी मात्रा में आदेश देती है तो आवेदन लागत में तो अनावश्यक वृद्धि हो जाएगी परन्तु स्कन्ध रखने की लागतें कम हो जाएंगी। आर्थिक आदेश मात्रा निर्धारित करते समय निम्न दो लागतों को ध्यान में रखा जाता है।

सूत्र रूप में,

No. of Order = S/Q

Total Ordering cost = S/Q x O = SO/Q

S = अवधि में प्रयुक्त सामग्री की कुल मात्रा

Q = प्रति आदेश की मात्रा

O = प्रति आदेश की आदेशन लागत।

अ. आदेशन लागत (Ordering Cost) –

औसत आदेशन लागत ज्ञात करने के लिए पूरे वर्ष की आदेशन लागतों का योग करके उसमें वर्ष भर के आदेशों की संख्या का भाग देना चाहिए। भारत के योजना आयोग के अनुसार औसत आदेशन लागत 10 रू. से 20 रू.के मध्य जानी चाहिये।

ब. स्कन्ध रखने की लागत (Inventory Carrying Cost) -

जब आदेशित माल संस्था को प्राप्त हो जाता है और उत्पादन के लिए प्रयोग न होकर भण्डार में सुरक्षित रखा जाता है तो स्कन्ध रखने की लागत आया करती है। इसके उदाहरण हैं – स्कन्ध में विनियोजित पूंजी की लागत, भण्डारण व्यय, बीमा व्यय, सामग्री क्रय, अप्रचलन की हानि, आदि। भारत के योजना आयोग ने इस लागतों को कुल लागत के 15–20 प्रतिशत तक अनुमानित किया है। आर्थिक आदेश मात्रा उस स्तर पर निर्धारित की जाती है जिस पर दोनों लागतों का योग न्यूनतम हो। आर्थिक आदेश मात्रा निर्धारित करने की निम्नलिखित तीन विधियां होती हैं।

अ. विश्लेषणत्मक विधि (Analytical Method) –

इस विधि में सामग्री की वार्षिक उपभोग मात्रा को भिन्न–भिन्न आकार के आदेशों में विभाजित कर लिया जाता है। प्रत्येक आदेश के आकार की आदेशन लागत और स्कन्ध रखने की लागत ज्ञात कर इन दोनों को जोड़ लिया जाता है। जिस आकार के आदेश पर कुल लागत न्यूनतम आती है उसे ही आर्थिक आदेश मात्रा मान लिया जाता है यह विधि सरल होने के बावजूद भूल एवं सुधार (Trial and error) पर आधारित होने के कारण कम स्वीकार्य होती है।

ब. बीजगणितीय विधि (Algebraic Method) –

यह सर्वाधिक लोकप्रिय विधि है जिसका प्रतिपादन विल्सन के द्वारा किया गया है। इसीलिए इसे विल्सन सूत्र विधि (Wilson Formula Method) भी कहा जाता है। आर्थिक आदेश मात्रा का निर्धारण निम्न बीजगणितीय सूत्र की सहायता से किया जाता है।

$$EOQ = \sqrt{\frac{2SO}{C}}$$

EOQ = आर्थिक आदेश मात्रा (Economic order Quantity)

S = वार्षिक उपयोग की अनुमानित इकाई (Estimated units of annual usage)

O = वार्षिक उपभोग की अनुमानित इकाई (Ordering cost per unit)

C = स्कन्ध रखने की लागत का प्रतिशत (Inventory carrying cost)

स. रेखाचित्र विधि (Graphical Method) –

इस विधि में हम आदेश देने के लागत स्कन्ध रखने की लागत तथा कुल लागत की विभिन्न आदेश आकारों के अनुसार रेखांचित्र पर अंकित करते है। आदेशन लागतें आदेश आकार के अनुसार बढ़ती जाती है। जबकि स्कन्ध रखने की लागतें घटती जाती हैं । अतः कुल लागत भी पहले घटती हैं फिर बढ़ने लगती हैं। जिस बिन्दु पर कुल लागत न्यूनतम होती है वही अधिक आदेश मात्रा बिन्दु होता है।

उदाहरण द्वारा विधियों का स्पष्टीकरण – इस उदाहरण से आर्थिक आदेश मात्रा की गणना विधियों को भली प्रकार स्पष्ट किया जा सकता हैं

वार्षिक उपयोग – 400 इकाई

प्रति आदेश देने की लागत – 100 रू.

स्कन्ध रखने की प्रति इकाई लागत– 8 रू.

(अ) विश्लेषणात्मक विधि –

No.of Order	Order Size (Units)	Ordering Cost	Average Inventory (Half of Order) (Units)	Inventory Carrying Cost (Rs)	Total Cost (Rs)
1	400	100	200	1600	1700
2	200	200	100	800	1000
3	133	300	67	536	836
4	100	400	50	400	800
5	80	500	40	320	820
6	67	600	33	264	864
7	57	700	29	232	932
8	50	800	25	200	1000

आर्थिक आदेश मात्रा 100 इकाई के जहाँ पर कुल लागत न्यूनतम 800 रू. है।

स. बीजगणितीय विधि

$$EOQ = \sqrt{\frac{2SO}{C}}$$

$$EOQ = \sqrt{\frac{2 \times 400 \times 100}{8}}$$

$$= \sqrt{10,000} \quad or \quad 100$$

Example:1,

एक्स कम्पनी एक ही प्रकार के उत्पाद का उत्पादन करती है। उत्पाद के उत्पादन हेतु कच्चे माल की 10 इकाइयां आवश्यक है। माना गया है कि कम्पनी 12,000 इकाइयों का उत्पादन प्रति वर्ष करती है वर्ष भर उत्पादन की मांग स्थिर है। कच्चे माल की प्रति आदेश लागत 200 रू. और प्रति इकाई स्कन्ध रखाव की लागत 10 रू. है (ए) आर्थिक आदेश मात्रा (बी) कुल स्कन्ध लागत और (सी) प्रति वर्ष आदेशों की संख्या को ज्ञात कीजिए।

Solution,

(a) Economic Order Quantity

SO or Annual requirement = 12,000 x 10 = 1,20,000 units

O = Rs. 300

C = Rs. 12

$$EOQ = \sqrt{\frac{2 \times 120000 \times 200}{10}}$$

$$= \sqrt{48,00,000}$$

$$= 2,190,89 \, Units$$

(b) Total Inventory Cost of 2,190.89 units (Ordering costs + Inventory Carrying costs)

Ordering Costs = 1,20,000 x 200/2,190.89

= Rs. 10,954.45

Inventory Carying costs= 2,190.89 x 10/2

= Rs. 10,954.45

Total Inventory cost = Rs. 21,908.50

(c) No.of Orders per year= 1,20,000/2,190.89

= 54.77 times per year

4.4 प्राप्यों का प्रबन्ध (Management of Receivables)

प्राप्य भी कार्यशील पूंजी प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण पहलू है। क्योंकि वर्तमान में साख के आधार पर व्यवसाय का प्रचलन बढ़ गया है। वर्तमान में प्रत्येक व्यवसायिक संस्था को अपनी बिक्री के स्तर को बनाए रखने एवं बिक्री की मात्रा में वृद्धि करने के लिए माल का उधार विक्रय करना होता है। प्रतिस्पर्द्धात्मक आर्थिक प्रणाली में प्रत्येक संस्था को लाभार्जन क्षमता के अधिकतमीकरण करने हेतु माल व सेवा का उधार विक्रय अपरिहार्य हो गया है। उधार प्रेम की भाषा है। अब तो यह कहावत आज सभी उपक्रमों में चरितार्थ हो रही है। उधार विक्रय से भुगतान भविष्य के लिए स्थगित हो जाता है। संस्था द्वारा ग्राहकों को प्रदत्त उध ाार सुविधा के ही कारण प्राप्यों का जन्म होता है वर्ष के अन्त तक उधार विक्रय की न वसूल की गई धनराशि प्राप्य कहलाती है। कुल सम्पत्तियों में प्राप्यों का अनुपात 15 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक पाया जाता है। अतः संस्था के सफल संचालन हेतु प्राप्यों का कुशल प्रबन्ध किया जाना आवश्यक होता है। प्राप्यों का प्रबंध वास्तव में देनदारों और प्राप्य बिलों के सुप्रबन्धन से सम्बन्धित है। इसमें निम्न पहलू सम्मिलित होते हैं –

अ. वसूली की नीति एवं विधियों का निर्धारण

ब. साख शर्तों का निर्धारण

स. साख नीति का निश्चयन

द. प्राप्यों की वसूली नीति का निर्धारण व

य. प्राप्यों का नियन्त्रण एव विश्लेषण ।

प्राप्यों का उद्देश्य (Objectives of Receivables) –

प्राप्यों के प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य संस्था की लाभदायिकता एवं तरलता के मध्य संतुलन बनाकर संस्था के मूल्य में वृद्धि करना है। यदि संस्था का उद्देश्य विक्रय में वृद्धि करना है तो सम्पूर्ण विक्रय उधार में करना होगा। अतः प्राप्यों के प्रबन्ध का उद्देश्य संस्था की साख का इस प्रकार प्रबन्धन करने से है जिससे कि विक्रय की वृद्धि के साथ–साथ डूबते ऋणों की जोखिम को न्यूनतम किया यजा सके। प्राप्यों के सृजन निम्न हैं –

1. फर्म के मूल्य को अधिकतम करना,
2. लाभों में वृद्धि करना,
3. विक्रय में वृद्धि करना,
4. अनुकूलतम स्तर तक देनदारों में विनियोग करना,
5. साख की लागत को नियंत्रित करना,
6. प्रतिस्पर्धा का सामना।

प्राप्यों में निवेश के आकार का प्रभावित करने वाले तत्व (Factors affecting the size of investments in receivables) –

नकद स्कन्ध एवं प्राप्य कार्यशील पूंजी के महत्वपूर्ण घटक हैं। प्राप्यों में विनियोगों का आकार कई तत्वों पर निर्भर करता है। सुविधा की दृष्टि से इन तत्वों को निम्न भागों में विभाजित किया जाता है –

1. प्रतिस्पर्द्धा की स्थिति (Condition of Competition) –

एकाधिकार की स्थिति वाली फर्में अपने माल का नकद विक्रय किया करती हैं और प्राप्यों का उदय ही नहीं होता है परन्तु जितनी प्रतियोगिता बढ़ेगी उतना ही संस्था के उधार विक्रय व प्राप्यों की मात्रा बड़ी होगी।

2. संग्रहण नीति (Collection Policy) –

संग्रहण नीति में ग्राहकों से पत्र व्यवहार, टेलीफोन सम्पर्क, व्यक्तिगत भेंट व कानूनी प्रयत्न शामिल किए जाते हैं। संस्था का प्रबन्ध तन्त्र इन प्रयत्नों पर जितना जोर देगा उतना ही प्राप्यों का आकार छोटा होगा।

3. साख नीतियाँ (Credit policies)–

रूढ़िवादी साख नीति अपनाने वाली संस्था के प्राप्यों का आकार लघु होता है जबकि उदारवादी साख नीति अपनाने वाली संस्था के प्राप्यों में वृद्धिमान प्रवृत्ति पाई जाती है।

4. उधार विक्रय की मात्रा (Volume of credit sales) –

उधार विक्रय की मात्रा और प्राप्यों के स्तर में धनात्मक सहसम्बन्ध पाया जाता है। यदि कोई फर्म अधिक मात्रा में उधार विक्रय करने का निर्णय लेती है तो निश्चित रूप से प्राप्तियों का आकार भी बड़ा होगा। यदि कम मात्रा में उधार

विक्रय किया जाता है तो प्राप्यों में निवेश का आकार लघु होगा।

5. ग्राहकों की आदतें (Customers Habits) –

ग्राहकों के भुगतान करने की आदतों का भी प्राप्यों के आकार पर प्रभाव पड़ता है। अगर ग्राहकों की मनोवृत्ति देय राशि के भुगतान करने में विलम्ब करने की रही हो तो प्राप्यों का आकार बड़ा होगा अन्यथा नहीं।

6. मौसमी बाजार (Seasonal Market) –

यदि संस्था के बाजार का स्वभाव मौसमी है तो उस मौसम विशेष में कुल विक्रय उधार विक्रय और प्राप्यों की मात्रा अन्य सामान्य दिवसों से अधिक होगी। उदाहरणार्थ अगर संस्था पंखा, कूलर व एयर कण्डीशनर का विक्रय करती है तो गरमी के मौसम में उसके प्राप्यों की मात्रा अधिक होगी।

7. विक्रय की शर्तें (Terms of sales) –

प्राप्यों में निवेश के आकार को विक्रय की शर्तें सर्वाधिक प्रभावित करती है। यदि उपक्रम उधार माल का विक्रय तनिक भी न करे तो प्राप्यों का अस्तित्व ही नहीं दिखेगा। जैसे, बाटा शू कम्पनी पूरी तरह नकद विक्रय ही किया करती है तो उनके यहॉ प्राप्य सृजन का प्रश्न ही नहीं उठता है। परन्तु व्यवहार में प्रतिस्पर्द्धा, प्रचलित प्रथाओं व व्यावसायिक परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए फर्म विशेष उधार माल बेचने को बाध्य हो जाया करती है।

8. अन्य तत्व (Other Factors) –

मूल्य स्तर में उच्यावचन, बिलों के कटौती की सुविधा, नकद छूट की नीतियों की उपलब्धता आदि भी प्राप्यों में निवेश के आकार को प्रभावित करते हैं।

अनुकूलतम साख नीति (Optimum Credit Policy) –

साख नीति का आशय उन निर्णयों से है जो एक संस्था की व्यवसायिक साख की राशि को प्रभावित करते हैं। प्राप्यों के प्रबन्ध में संस्था की साख नीति का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। संस्था की साख नीति यह स्पष्ट करती है कि एक संस्था कब और कितनी मात्रा में अपने ग्राहकों को साख की सुविधा प्रदान करें। अनुकूलतम साख नीति उस बिन्दु पर होती है जहाँ तरलता और लाभदायकता चक्र एक दूसरे को काटते हैं। वित्तीय प्रबन्धक को साख नीति का निश्चयन

करते समय न तो अत्यधिक उदार होना चाहिए और न ही अत्यधिक कठोर, यह तो अनुकूलतम होना चाहिये। उदार एवं कठोर साख नीतियों के अपने अपने गुण दोष होते हैं।

(क) उदार साख नीति (Liberal Credit Policy) – जब माल उधार की उदार शर्तों पर बेचा जाएगा तो बिक्री व लाभ दोनों बढ़ते हैं। फर्म विक्रय को बढ़ाने, पुराने ग्राकहों को बनाये रखने, नये ग्राहकों को आकृष्ट करने व मन्दीकाल में स्थिति सुधारने के लिए यह उदार साख नीति अपनाया करती है। परन्तु उदार साख नीति की कुछ बुराइयाँ भी हैं – 1. देनदारों में पूंजी व अशोध्य ऋणों से हानियाँ बढ़ जाती है।

(ख) कठोर साख नीति (Tight Credit Policy) – कम्पनियाँ विशेष परिस्थितियों में ही कुछ गिने चुने ग्राहकों को ही उधार माल बेचती है। और सामान्य रूप से नकद विक्रय की नीति अपनाती है। इससे तरलता स्थिति सुधारती है, संस्था के ब्याज व पूंजी की लागत में कमी आती है। एवं अशोध्य ऋणों की राशि में कमी आती है। फिर भी कठोर साख नीति में बुराइयाँ हैं – 1. फर्म का विक्रय घटता है। 2. लाभोपार्जन क्षमता पर कुप्रभाव पड़ता है। 3. नवीन ग्राहक कम आकृष्ट होते हैं। फर्म को उदार व कठोर साख नीति के मध्य अनुकूलतम साख नीति अपनानी चाहिए। कठोर साख नीति में तरलता अधिक व लाभदायकता कम होती है जबकि उदार साख नीति में तरलता कम व लाभदायकता अधिक होती है। अनुकूलतम साख नीति का बिन्दु वह होगा जहाँ तरलता व लाभदायकता एक दूसरे को काटते हैं विक्रय की जिस मात्रा पर वे दोनों चक्र मिलते हैं वहीं अनुकूलतम साख की मात्रा होती है।

प्राप्यों के प्रबन्ध का क्षेत्र (Scope of functions of Management of Receivables) –

आधुनिक युग में उधार विक्रय की बहुलता के कारण प्राप्य सुप्रबन्धन वित्तीय प्रबन्धक की प्रमुख जिम्मेदारी हो गई है। प्राप्यों के प्रबंध के अन्तर्गत निम्न क्षेत्र अथवा कार्य सम्मिलित किए जाते हैं –

1. **साख नीति का निर्धारण (Determination of Credit Policy)** – बहुधा साख नीति में ग्राहकों को माल उधार बेचने से सम्बन्धित अग्र बिन्दुओं का समावेश किया जाता है।

(अ) उधार के स्तर (Credit Standards) – जो ग्राहक इन मानकों पर खरे उतरते हैं केवल उन्हें ही उधार की सुविधा प्रदान की जाती है और अन्य ग्राहकों को नकद माल ही बेचा जाता है। इन उधार मानकों में ग्राहक को ऋण भुगतान क्षमता व उनकी वित्तीय सुदृढ़ता निश्चित की जाती है।

(ब) उधार अवधि (Credit Period) – जो ग्राहक स्वीकृत अवधि से पहले भुगतान कर देते हैं उन्हें नकद छूट देने की व्यवस्था की जाती है। उदाहरणार्थ एक फर्म 2 प्रतिशत नकद छूट देने के लिए 30 दिनों की अवधि निश्चित करती है तो अगर कोई ग्राहक उधार माल 5000 रू. का क्रय करता है और 30 दिन के बाद भुगतान करेगा तो नकद छूट की सुविधा नहीं दी जाएगी।

(स) उधार सीमा (Credit Limits) – जब यह निर्धारित हो जाता है कि किन ग्राहकों को कितने समय के लिए उधार स्वीकार करना है, तब यह निर्धारित हो जाता है कि उधार किस सीमा तक स्वीकृत की जाएगी।

(2) साख आवेदकों का मूल्यांकन (Evaluation of Credit Applicants)– यदि साख आवेदकों की मूल्यांकित साख योग्यता उधार मानकों के अनुरूप होती है तो उच्च प्रबन्ध द्वारा उधार माल ग्राहकों को देंने के पक्ष में निर्णय किया जाता है अन्यथा नकद क्रय करने के लिएं प्रेरित किया जाता है।

(3) संग्रहण प्रक्रिया का निश्चयन (Determination of Collection Procedure)– उधार देरे के पश्चात प्राप्यों के प्रबन्ध का अगला कदम उधारों का संग्रहण होता है। वसूली की प्रक्रिया न केवल निश्चित कर लेना ही महत्वपूर्ण है बल्कि उस पर दृढ़ता से क्रियान्वयन भी करना चाहिए। संग्रहण की निम्न विधि ायों में से किसी भी एक का प्रयोग किया जा सकता है।

1. प्रत्यक्ष पूंजी,
2. नकद छूट का प्रलोभन देकर वसूली
3. तकादे के पत्रों द्वारा वसूली,
4. संग्रहण संस्थाओं के माध्यम से वसूली

(4) प्राप्यों का विश्लेषण (Analysis of Receivables) – प्राप्यों में विनियोग को समुचित स्तर पर बनाये रखने और उसे नियन्त्रित रखने के लिए

आवश्यक है कि समय–समय पर उनका विश्लेषण किया जाता रहे। प्राप्यों के विश्लेषण हेतु निम्न तकनीकें अपनाई जा सकती है।

(अ) अनुपात तकनीक (Ratio Technique) – प्राप्यों के विश्लेषण हेतु कई अनुपातों की गणना की जा सकती है। इन अनुपातों में प्राप्यों का चालू सम्पत्तियों से अनुपात (Ratio of Receivables to Current Assets), प्राप्यों का चालू दायित्व से अनुपात (Ratio of Receivables to current liabilities), प्राप्य, आवर्त अनुपात (Receivables Turnover Ratio), औसत संग्रहण अवधि (Average Collection Period) मुख हैं। इन अनुपातों की सहायता से प्राप्यों के सम्बन्ध में प्रबन्धकीय दक्षता का परीक्षण किया जा सकता है। विगत 5 या 7 वर्षों के अनुपातों का अध्ययन करके प्रवृत्ति का पता लगाया जा सकता हैं।

(ब) प्राप्य विनियोग बजट (Receivables Investment Budget) – अन्य बजटों की ही भांति आन्तरिक नियंत्रण के लिए प्राप्य बजट एक उपयोगी यन्त्र है। इसे मासिक आधार पर प्रारम्भिक प्राप्य शेष में उधार विक्रय का योग करके और प्राप्य वसूली तथा अप्राप्य ऋण को घटा करके बनाया जाता है।

4.5 सारांश

स्कन्ध प्रबन्ध का सारांश यह है कि स्कन्ध की मात्रा एवं उसमें विनियोजित राशि पर नियंत्रण से है जैसा कि ऊपर बताया गया है कि एक व्यावसायिक संस्था की कार्यशील पूंजी का एक बड़ा भाग स्टॉक के रूप में रहता है। अतः उसका प्रबन्ध उचित ढंग से न किया जाय तो पूंजी का एक भाग बेकार पड़ा रहेगा तथा संस्था को अनावश्यक रूप से हानि होगी। इस प्रकार स्कन्ध एवं प्रबन्ध दोनों शब्दों को समझने के बाद स्कन्ध नियंत्रण भी आवश्यक हो जाता है। सार रूप में स्कन्ध नियंत्रण कच्चे माल अर्द्ध निर्मित माल एवं निर्मित माल की मात्रा एवं इसमें विनियोजित पूंजी के सुचारू प्रबन्धन से होता हैं

प्राप्य सस्था के अपने ग्राहकों के प्रति दावों का प्रतिनिधित्व करते हैं। और इन्हें चिट्ठे में चालू सम्पत्तियों के शीर्षक के अन्तर्गत विविध देनदार, पुस्तकीय ऋण, प्राप्य बिल आदि नामों से जाना जाता है। अर्थात सार रूप में प्राप्यों के कुशलतापूर्वक प्रबनध के लिए यह आवश्यक है कि संस्था की साख एवं संग्रहण नीतियों का अध्ययन गहनता से करना अनिवार्य हैं ।

4.6 शब्दावली

रखरखाव की लागत : स्टोर में सामग्री के रखने के व्ययों को रखरखाव की लागत कहा जाता है।

आदेशित लागत : संस्था के बाहर से क्रय अथवा संस्था में उत्पादित किए गये माल पर विभिन्न क्रियाओं के करने से उत्पन्न व्यय को आदेशित लागत कहते हैं।

स्टॉक समाप्त होने की लागत : स्टॉक में माल न रहने के कारण उत्पादन बन्द होना और निर्मित माल का स्टॉक भी ग्राहकों के आदेशों की पूर्ति नहीं कर पाने से संस्था को जो क्षति होती है। उसे स्टॉक समाप्त होने की लागत कहते हैं।

ई. ओ. क्यू. : सामग्री को प्राप्त करने की लागत एवं रखरखाव के मध्य संतुलन स्थापित करना ही आर्थिक मितव्ययी आदेश मात्रा है।

साख नीति – साख नीति से आशय ग्राहकों को माल उधार बेचने से सम्बन्धित है।

उदार साख नीति – उदार साख नीति से आशय वित्तीय प्रबन्धक देनदारों को उदार शर्तों पर अधिक धनराशि अधिक समय के लिए उधार देता है।

कठोर साख नीति – इस नीति के तहत कम्पनियाँ कुछ गिने चुने ग्राहकों को ही उधार माल बेचते हैं इसलिए इसे कठोर साख नीति कहते हैं।

अनुकूलतम साख नीति – जहाँ तरलता और लाभदायकता वक्र एक दूसरे को काटते हैं उस बिन्दु अनुकूलतम साख नीति कहते हैं।

4.7 स्व–परक प्रश्न

1. स्कन्ध का अर्थ क्या है? स्कन्ध से किस उद्देश्य की पूर्ति होती है?

2. ई. ओ. क्यू. मॉडल की मान्यता क्या है? ई.ओ.क्यू. सूत्र का निरूपण कीजिए एवं उदाहरण देकर समझाइये।

3. स्कन्ध से आप क्या समझते हैं? इसके प्रबन्धन के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए। स्कन्ध में विनियोजित स्तर को निर्धारित करने वाले कारकों का संक्षिप्त

विवेचन कीजिए।

4. आर्थिक आदेश मात्र किसे कहते हैं? इसको किस प्रकार निर्धारित किया जाता है?

5. प्राप्यों के प्रबन्ध से आप क्या समझते हैं? इसके उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।

6. साख प्रदान करने पर लागत लाभ में क्या सम्बन्ध होता है? अनुकूलतम साख निर्धारण के लिए इसे कैसे उपयोग में लाया जाता है?

7. प्राप्यों में निवेश को प्रभावित करने वाले विभिन्न घटकों का वर्णन कीजिए।

8. प्राप्यों के प्रबन्ध से क्या तात्पर्य है? प्राप्यों मे निवेश के आकार को निध ारित करने वाले कारकों की विवेचना कीजिए।

इकाई – 5 रोकड़ प्रबन्ध (Cash Management)

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 रोकड़ प्रबन्ध का आशय

5.4 रोकड़ प्रबन्ध के उद्देश्य

5.5 रोकड़ प्रबन्ध की आवश्यकता एवं महत्व

5.6 रोकड़ प्रबन्ध के मॉडल

5.7 सारांश

5.8 शब्दावली

5.9 स्व–परक प्रश्न

5.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- रोकड़ प्रबन्ध का अर्थ बता सकें।
- रोकड़ प्रबन्ध के उद्देश्यों का वर्णन कर सकें।
- रोकड़ प्रबन्ध की आवश्यकता एवं महत्व को समझा सकें।
- रोकड़ प्रबन्ध के विभिन्न मॉडलों के व्याख्या कर सकें।

5.2 प्रस्तावना

रोकड़ प्रबन्ध किसी भी संगठन में एक महत्वपूर्ण प्रकार्य होता है। जिससे संगठन कुशलता पूर्वक चलाया जा सके। वित्त व्यवसाय का जीवन रक्त है। ठीक वैसे ही व्यवसाय में रोकड़ प्रबन्ध अपनी महती भूमिका विभिन्न तरह से निभाता है। प्रस्तुत इकाई में रोकड़ प्रबन्ध का आशय, महत्व और विभिन्न मॉडलों को इस प्रकार दर्शाया गया है कि, रोकड़ प्रबन्ध के महत्व को स्पष्ट किया जा सके। अर्थात इन सबकी व्याख्या क्रमानुसार की जा रही हैं।

5.3 रोकड़ प्रबन्ध का आशय

रोकड़ एक ऐसी महत्वपूर्ण चल सम्पत्ति है जिसके बिना किसी व्यवसाय का सफल संचालन करना संभव नहीं होता। रोकड़ में सर्वाधिक तरलता का गुण रहता है। इस कारण रोकड़ का प्रबन्ध वित्त प्रबन्धकों की सबसे बड़ी समस्या है। रोकड़ प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य संस्था की तरलता एवं लाभदायकता में वृद्धि करना होता है। कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य संस्था की प्रत्येक सम्पत्ति का अनुकूलतम उपयोग करना होता है। चालू सम्पत्तियों में रोकड़ प्राप्य बिल व रहतिया को सम्मिलित किया जाता है। रोकड़ व्यवसाय के चालू सम्पत्तियों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग होता है। यह व्यवसाय का प्रारम्भिक और अन्तिम बिन्दु (Starting and Finishing Point) होता है। यह व्यवसाय का रक्त है। वित्तीय प्रबन्ध में रोकड़ का संकीर्ण अर्थ हस्तस्थ रोकड़ (Cash in hand) व बैंक शेष से होता है। परन्तु विस्तृत अर्थ में विपणन योग्य प्रतिभूतियॉ (Marketable Securities) तथा बैंक सावधि जमा (Bank Time Deposits) को भी रोकड़ में सम्मिलित किया जाता हैं।

रोकड़ एवं रोकड़ तुल्य सम्पत्तियाँ (Cash and Cash equivalent Assets)–

रोकड़ का प्रबन्ध चल सम्पत्तियों के प्रबन्ध का केन्द्र बिन्दु है। नकद कोश का व्यापार में वही स्थान है जो मानव शरीर में रक्त का। रक्त के उचित संचालन की ही भाँति रोकड़ का अन्तर्वाह एवं बहिर्वाह स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। रोकड़ प्रबन्ध का आशय रोकड़ उपलब्धता तथा किसी व्यर्थ कोश पर ब्याज आय को अधिकतम करने के उद्देश्यों से एक फर्म के मुद्राओं के प्रबन्धन से है।

रोकड़ कोषों का प्रबन्ध यह सुनिश्चित करता है कि वक्त पर नकदी की कमी न पड़े और व्यवसाय में रोकड़ का प्रवाह ठीक बना रहने के साथ ही साथ उनका उचित प्रयोग सुनिश्चित हो सके। रोकड़ प्रबन्ध 5 R's - Right quality, Right quantity, Right time, Right source, Right cost- उचित गुण, उचित मात्रा, उचित समय, उचित साधन, उचित लागत का निर्णय है। रोकड़ प्रबन्ध के मुख्य रूप से निम्न चार पहलू या आयाम (Facets or Dimensions) होते हैं ।

1. **रोकड़ नियोजन (Cash Planning)** – इसके अन्तर्गत रोकड़ की आवश्यकता का उचित ढंग प्रमुखतया रोकड़ बजट के द्वारा, नियोजन कर लिया जाना चाहिए। इसके लिए रोकड़ के अन्तर्वाहों और बहिर्वाहों का पहले से अनुपात लगाया जाता है ताकि अधिकता या न्यूनता का स्पष्ट पूर्वाभास हो सके।

2. **रोकड़ प्रवाहों का प्रबन्धन (Managing the Cash Flows)** – रोकड़ प्रवाह (अन्तर्वाह एवं बहिर्वाह) का प्रबन्ध इस ढंग से करना चाहिए कि रोकड़ का संग्रहण शीघ्रता से हो सके और भुगतान यथासम्भव विलम्ब से करना पड़े। रोकड़ के संग्रहण की गति को तीव्र करने के लिए विकेन्द्रित संग्रहण (Decentralised collections) और तालक सन्दूक प्रणाली (Lock Box system) का प्रयोग किया जा सकता है। इसके विपरीत रोकड़ के वितरण की स्थिति में केन्द्रित व्रूवस्था अपनाई जा सकती है। ताकि भुगतान करने में अधिक समय लग सके।

3. **अनुकूलतम रोकड़ शेष (Optimum cash balance)** – रोकड़ प्रबन्धन का एक प्रमुख पहलू अनुकूलतम स्तर का निर्धारण है रोकड़ आधिक्य की लागत तथा रोकड़ कमी के दुप्रभावों को ध्यान में रखते हुए अनुकूलतम शेष की सीमा तय की जा सकती हैं ।

4. **अतिरिक्त रोकड़ का विनियोग (Investment of Excess Cash)** – रोकड़ प्रबन्धन का चौथा पहलू निष्क्रिय रोकड़ का विनियोग करता है। ताकि फर्म का वह पैसा अनुत्पादक न पड़ा रहे। यह विनियोग प्रायः बैंक निक्षेपों व विपणन योग्य प्रतिभूतियों में किया जाता है इसकालाभ यह होता है कि फर्म की कुछ आय की प्राप्ति भी की जाती है।प्रतिभूतियों का चुनाव करते समय सुरक्षा (Safety), परिपक्वता (Maturity), एवं विषणनशीलता (Marketability) का ध्यान रखा जाना चाहिए।

5.4 रोकड़ प्रबन्ध के उद्देश्य

वित्तीय प्रबन्धक संस्था के लिए अनुकूलतम नकद कोषों का निर्माण करें। जिससे कि संस्था अपने आवश्यकताओं की पूर्ति तुरन्त कर सके। व्यवसाय में रोकड़ की उपलब्धता जीवन और मरण के समान है, नकद कोष न केवल

व्यवसाय को प्रारम्भ करने अथवा संचालित करने के लिए आवश्यक है अपितु भविष्य की आकस्मिकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक है। अतः नकद कोष रखने के निम्न उद्देश्य हैं –

1. सतर्कता,
2. व्यापार प्रयोजन सम्बन्धी,
3. व्यवसाय सुअवसर का लाभ,
4. कार्यकुशलता में वृद्धि
5. नये विनियोग को प्रोत्साहन,
6. ख्याति को बनाये रखना,
7. बैंकों व ऋणदाताओं से मधुर सम्बन्ध,
8. व्यापारिक छूट प्राप्त करना इत्यादि।

5.5 सरलता की आवश्यकता एवं महत्ता (Need and Importance of Liquidity)

अभिप्रेरण नकद कोषों को रखने का मूल आधार है। एक सामान्य व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं एवं आकस्मिकताओं की पूर्ति के लिए नकद कोषों को रखता है। परन्तु एक व्यवसायी की आवश्यकता इससे अधिक होती है। पर्याप्त नकदी कोषों का होना व्यवसाय में आवश्यक होता है अन्यथा इसके बिना संकट का आना अवश्यम्भावी है। हम स्वयं की बात करें । अगर हमारे पास 10 करोड़ रू. मूल्य का भवन है, फिर भी आज की सब्जी खरीदने पर 100 रू. खर्च करना हो तो बिना रोकड़ के काम नहीं चलता। उसी प्रकार व्यवसाय का संचालन रक्त ही रोकड़ है। तरलताहीनता या रोकड़हीनता तो व्यवसाय के अस्तित्व को ही मिटाकर दिवालिया बना सकती है। उचित तरलता से निम्नलिखित महत्वपूर्ण लाभ मिलते हैं।

1. व्यापार सम्बन्धी प्रयोजन के लिए कोष आवश्यक है।
2. सुरक्षा सम्बन्धी प्रयोजन,
3. सट्टा सम्बन्धी प्रयोजन,

4. कच्चे माल के प्रदाता को त्वरित भुगतान करने से निरन्तर आपूर्ति एवं अधिक साख सुविधा प्राप्त होती है।

5. तरलता सुदृढ़ होने पर संस्था तुरन्त भुगतान करके नकद कटौती का लाभ प्राप्त कर सकती है जिससे उत्पादन क्षमता एवं लाभों में वृद्धि होती है।

6. जिन व्यावसायिक संस्थाओं की तरलता स्थिति मजबूत होती है उनके बैंकों से मधुर सम्बन्ध बने रहते हैं।

7. आपत्तिकाल में नकद कोष सुरक्षा बन्धन का काम करते हैं और संस्थाएं अपनी अस्तित्व रक्षा में सफल होती हैं।

8. सुनहरे व्यावसायिक अवसरों का लाभ उठाने के लिए भी उपक्रम कों नकोष बनाए रखना आवश्यक है।

9. प्रत्येक उपक्रम को दैनिक दायित्वों की पूर्ति एवं संचालन कार्यों के लिए रोकड़ की आवश्यकता होती है।

10. व्यावसायिक उच्चबंधनों एवं बन्दी का सामना भी मजबूत तरलता से किया जा सकता है।

11. पर्याप्त रोकड़ संस्था की कार्यकुशलता, ख्याति एवं मनोबल में वृद्धि करती है।

5.6 रोकड़ शेष को निर्धारित करने वाले तत्व (Factors Determining Cash Balance)

रोकड़ का अनुकूलतम स्तर बनाये रखना वित्तीय प्रबन्धकों के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है। आवश्यकता से अधिक रोकड़ एवं आवश्यकता से कम रोकड़ दोनों ही व्यवसाय के लिए हानिकारक है। अतः एक व्यावसायिक संस्था के पास इतनी रोकड़ अवश्य होनी चाहिए कि, उसकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। एवं अप्रत्याशित घटनाओं का सामना किया जा सके। किसी व्यवसाय में नकद कोष की मात्रा की आवश्यकता को निम्न निर्णायक तत्व प्रभावित करते हैं।

1. **रोकड़ भुगतान (Cash payments)** – यदि फर्म अपने ऋणों के

भुगतान करने में विलम्ब करे तो कम रोकड़ शेष चाहिए। अगर फर्म ऋणों का तुरन्त भुगतान करने को इच्छुक रहती हो तो अधिक रोकड़ शेष निर्धारित करना होगा।

2. **स्कन्ध स्थिति (Inventory Position)** – प्रत्येक व्यावसायिक संस्था को व्यापार संचालन हेतु कच्चे व तैयार माल का स्कन्ध रखना पड़ता है। जिस व्यवसाय में स्कन्ध अधिक मात्रा में रखा जाता है वहाँ पर नकद कोषों की जरूरत अधिक होती हैं ।

3. **उत्पादित माल की मांग (Demand of Produced Goods)** – अगर संस्था द्वारा निर्मित माल की मांग लगातार रहती है। तो कम नकद कोषों की जरूरत होती है। इसके विपरीत पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादकों को अधिक नकद कोष जरूरत होगी।

4. **व्यापार की मात्रा (Size of Trade)** – एक छोटे व्यापार में बड़े व्यापार की तुलना में कम रोकड़ की आवश्यकता अवश्यम्भावी है। बड़ी स्पष्ट बात है कि पान विक्रेता को रोकड़ की आवश्यकता फ्रीज विक्रेता से जरूर कम हुआ करेगी।

5. **रोकड़ संग्रहण (Cash Collection)** – अगर फर्म रोकड़ की वसूली के लिए विकेन्द्रित संग्रहण, तालक सन्दूक प्रणाली अन्तर कम्पनी रोकड़ हस्तान्तरण पर नियन्त्रण जैसी तकनीकों का प्रयोग करती है तो रोकड़ की गति तीव्र होगी और रोकड़ शेष की कम जरूरत होगी। इसके विपरीत, अधिक जरूरत महसूस होगी।

6. **बैंकिंग सम्बन्ध (Banking Relations)** – ऐसी कम्पनियाँ जिनके अपने जीवनकाल में बैंकों के साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं तथा बैंकों की दृष्टि से जिनकी अच्छी साख है वे कम रोकड़ स्तर से ही काम चला सकती हैं ।

7. **क्रय–विक्रय की शर्तें (Terms of Purchases and Sales)** – अगर फर्म उधार क्रय को नकद क्रय की तुलना में प्राथमिकता देती है तो कम रोकड़ की जरूरत रहेगी, अन्यथा अधिक रोकड़ चाहिए। इसी प्रकार फर्म यदि उधार विक्रय को प्रोत्साहित करती है तो अपेक्षाकृत अधिक रोकड़ चाहिए।

8. **व्यवसाय की प्रकृति (Nature of business)** – कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जहाँ पर रोकड़ की आवश्यकता स्थाई पूंजी की तुलना में कम होती है फिर भी कुल सम्पत्तियों की तुलना में तरल कोषों का अनुपात 5 प्रतिशत से 10 प्रतिशत के बीच रहता है।

9. साख नीति, उत्पादन प्रक्रिया, उत्पादन नीति, वितरण प्रणाली, प्रबन्धकीय नीति, एवं वसूली नीति इत्यादि।

10. मन्दी की स्थिति।

11. **अन्य तत्व (Order Factors)** – कुछ अन्य तत्व भी हैं जैसे –

क. नकद कोषों का कुशल प्रबन्ध

ख. प्राप्य विपत्रों की दशा,

ग. भावी मुद्रा स्फीति की आशंका

घ. लाभांश नीति, व

ङ स्कन्ध आवर्त अनुपात।

5.7 रोकड़ प्रबन्ध के मॉडल (Models of Cash Management)

अनुकूलतम रोकड़ शेष के निर्धारण के लिए विभिन्न गणितीय प्रतिमानों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु यह प्रतिमान अनुकूलता को ध्यान में रखते हुए प्रयोग में लाने चाहिए क्योंकि इनका अनुमान लगाना कठिन कार्य है। प्रतिमानों के प्रयोग के लिए वित्तीय प्रबन्धकों को काफी सूचनाओं की आवश्यकता होती है। रोकड़ के अनुकूलतम शेष की राशि ज्ञात करने के लिए निम्न मॉडल प्रयोग में प्रचलित हैं :

1. **बॉमोल प्रतिमान (Baumol's Model)** – इस मॉडल के अनुसार कार्यशील रोकड़ शेष का निर्धारण उस समय किया जाता है जब रोकड़ प्राप्ति व भुगतान की राशि निश्चित हो। इस मॉडल में रोकड़ शेष रखने की लागत अर्थात विनियोगों पर अर्जित किये जाने वाली ब्याज की हानि एवं प्रतिभूतियों का विक्रय करने पर वहन की जाने वाली लागत के मध्य संतुलन स्थापित किया जाता है।

विलियम जे. बॉमोल ने आर्थिक आदेश मात्रा (Economic Order Quantity - EOQ) की ही भांति अनुकूलतम रोकड़ स्तर निर्धारण का सूत्र प्रतिपादित किया। जिस प्रकार आर्थिक आदेश मात्रा रहतिया के प्रबन्ध के लिए उपयोगी है, जिसमें रहतिया आदेश की अनुकूलतम मात्रा तथा आदेशों की अनुकूलतम संख्या का निधारण किया जाता है उसी प्रकार रोकड़ के प्रबन्ध के लिए भी अनुकूलतम रोकड़ स्तर का निर्धारण किया जा सकता है। इस मॉडल से रोकड़ की अनुकूलतम राशि का निर्धारण तथा उस समय का निर्धारण करते हैं जब विपणन योग्य प्रतिभूतियों एवं अल्पकालीन विनियोगों को बेचकर रोकड़ प्राप्त करनी चाहिए अथवा जब रोकड़ की राशि को विपणन योग्य प्रतिभूतियों एवं अल्पकालीन विनियोगों में निनियोग करना चाहिए।

बॉमोल का अनुकूलतम रोकड़ स्तर आकलन सूत्र निम्न हैं

$$Q=\sqrt{\frac{2DO}{I}}$$

यहाँ पर, Q = रोकड़ शेष का अनुकूलतम स्तर,

D = रोकड़ का वार्षिक उपभोग,

O = प्रति व्यवहार लागत, व

I = प्रतिभूतियों की ब्याज दर।

बॉमोल का मॉडल ई. ओ. क्यू. सिद्धान्त की मान्यताओं पर आधारित है और ये मान्यताएं व्यवहार में खरी नहीं उतरतीं क्योंकि, व्यवहार में नकद अस्थिर एवं अनिश्चित होते हैं अर्थात भुगतानों एवं प्राप्तियों की राशि में पर्याप्त विचरण होता है।

1. मिलर–ओर का रोकउ प्रबन्ध मॉडल (Miller-Orr's Cash Management Model) –

इस मॉडल की मान्यताएं निम्न हैं –

1. फर्म के पास एक न्यूनतम आवश्यक रोकड़ शेष हैं।
2. रोकड़ बहाव सामान्य रूप से वितरित है।

3. रोकड़ बहाव में कोई स्व–सह–सम्बन्ध नहीं हैं

4. रोकड़ बहाव का प्रमाप विचलन समय के अनुसार परिवर्तित नहीं होता है।

5. रोकड़ बहाव शून्य है।

उपरोक्त मान्यताओं पर आधारित मिलर और मॉडल मूलतः रोकड़/विनियोग निर्णय में नियंत्रण सीमा सिद्धान्त का प्रयोग है। मेर्टन एच, मिलर एवं डेनियल ओर के अनुसार रहतियां प्रबन्ध और रोकड़ प्रबन्ध में काफी समानताएं हैं मिलर और ओर ने एक ऐसा मॉडल विकसित किया जिसमें रोकड़ के उच्चतम एवं निम्नतम स्तर तथा विपणन योग्य प्रतिभूतियों में विनियोग की जाने वाली रोकड़ का समय एवं मात्रा निर्धारित की जाती है। इस मॉडल में सौदा लागत एवं अवसर लागत के आधार पर नियंत्रण सीमा (Control limit) तय की जाती है जो रोकड़ शेष के उच्चावचन से भी प्रभावित रहती हैं ।

मिलर ओर मॉडल का सूत्र निम्न है –

$$R = \sqrt[3]{\frac{3aV}{4i}}$$

यहा पर,

a = प्रतिभूति व्यवहार से सम्बन्धित स्थायी लागत,

V = दैनिक रोकड़ प्रवाहों का विचरण (Variance), व

i = विनियोग पर दैनिक ब्याज दर ।

यदि L निचली सीमा है तो अनुकूलतम वापसी बिन्दु (R+L) बराबर होगा।

2. **स्टोन मॉडल (Stone Model)** – यह मॉडल आशंसित भावी रोकड़ बहाव के आधार पर विनियोग करने व विनियोग बेचने से सम्बन्धित निर्णयों में कुछ सुधार करने का प्रयत्न करता है। इस मॉडल में भी नियंत्रण सीमा होती है। परन्तु ये नियंत्रण सीमाएं एक एक न होकर दो दो होती हैं अर्थात विनियोग बेचकर प्राप्त राशि इतनी होनी चाहिए कि आपसी बिन्दु पर पहुँच जाए या विनियोग करने की राशि इतनी होनी चाहिए कि वापसी बिन्दु पर पहुँच जाए।

5.8 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि रोकड़ का प्रबन्ध यह सुनिश्चित करता है कि व्यावसायिक संस्था में आवश्यकता के समय नकदी की कमी न रहे और व्यवसाय में रोकड़ का समुचित प्रवाह बना रहे जिससे उसका उचित प्रयोग सुनिश्चित हो सके। निष्कर्ष स्वरूप रोकड़ प्रबन्ध व्यावसायिक संस्था के लाभों को अधिकतम करने के लिए तरलता एवं लाभदायकता में संतुलन स्थापित करना है।

5.9 शब्दावली

रोकड़ नियोजन : रोकड़ नियोजन से तात्पर्य रोकड़ प्राप्ति की मात्रा का अनुमान एवं भुगतान को व्यवस्थित करने से होता हैं ।

रोंकड़ बहाव विश्लेषण : एक निश्चित अवधि में रोकड़ के विभिन्न स्त्रोतों एवं रोकड़ के विभिन्न प्रयोगों का विवेचन हैं

रोकड़ बजट : एक निश्चित समयावधि में रोकड़ के आगमन एवं बहिर्गमन का लेखा ही रोकड़ बजट है। वस्तुतः रोकड़ बजट लक्ष्य के रूप में रोकड़ बहाव का निरूपण करता है।

रोकड़ चक्र मॉडल : रोकड़ चक्र का सम्बन्ध फर्म के खातों के माध्यम से रोकड़ बहाव से होता है। रोकड़ बहाव की सम्पूर्ण क्रिया को रोकड़ चक्र मॉडल कहते हैं।

5.10 स्व–परक प्रश्न

1. रोकड़ प्रबन्ध के अर्थ की स्पष्ट व्याख्या कीजिए और रोकड़ व तरल सम्पत्तियों को रखने के मुख्य प्रयोजनों को समझाइये।
2. एक फर्म में नकदी रखने के मुख्य उद्देश्य क्या हैं? उन कारणों की व्याख्या कीजिए जो एक फर्म के द्वारा रखे जाने वाले नकदी कोषों का स्तर निर्धारित करते हैं।

3. व्यवसाय में तरलता की आवश्यकता क्यों होती है? रोकड़ प्रबन्ध के विभिन्न आयामों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

4. रोकड़ प्रवाह प्रबन्धन किस प्रकार किया जाता है? बॉमोल के प्रबन्ध मॉडल का वर्णन कीजिए।

5. अनुकूलतम रोकड़ स्तर का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है? रोकड़ प्रबन्ध के किन्हीं दो मॉडलों का अध्ययन कीजिए।

———

NMDC-131

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

M.COM 205

वित्तीय प्रबन्ध

खण्ड
2
लाभांश निर्णय

इकाई - 1
लाभांश नीति 63

इकाई - 2
लाभांश के सिद्धान्त 71

इकाई - 3
लाभांश नीतियों के प्रकार/स्वरूप 91

इकाई - 4
लाभांश के प्रकार 100

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

संरचनात्मक सम्पादन

डॉ0 मंजूलिका श्रीवास्तव	निदेशक, दूरस्थ शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

विषयगत सम्पादन

प्रो0 मूल मोतिहार	प्रोफेसर, मोनिरबा, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 डी0 डी0 बेडिया	रीडर, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन

प्रस्तुत पाठ्य सामग्री में विषय से सम्बन्धित सभी तथ्य एवं विचार मौलिक रूप से लेखक के स्वयं के है।

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज - 2024
ISBN -

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नही है।
प्रकाशक- उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित वर्ष - 2024.
मुद्रक - के0 सी0 प्रिटिंग एण्ड एलाइड वर्क्स , पंचवटी , मथुरा - 281003.

खण्ड-2 परिचय-

इस खण्ड में वित्तीय प्रबन्ध के अन्तर्गत लाभाश - निर्णय की व्याख्या निम्नलिखित चार इकाईयों में प्रस्तुत की गई है।

इकाई एक में लाभांश नीति के अर्थ व महत्व की व्याख्या की गई है।

इकाई दो में लाभांश के सिद्धान्त के सम्बन्ध में विस्तृत व गहन विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इकाई तीन में लाभांश - नीतियों के प्रकार व स्वरूप की व्याख्या की गई है।

इकाई चार में लाभांश के प्रकार की विस्तृत व्याख्या की गई है।

इकाई – 1 लाभाश नीति (Dividend Policy)

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 लाभांश नीति

1.4 लाभांश नीति का अर्थ

1.5 सारांश

1.6 शब्दावली

1.7 स्व–परक प्रश्न

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- लाभांश नीति का अर्थ बता सकें।
- लाभांश नीति का कम्पनी पर क्या प्रभाव होगा, इसका आंकलन कर सकें।
- कम्पनी की लाभांश नीति से कम्पनी के अंशधारियों पर क्या प्रभाव हो सकेगा। इसका भी आकलन कर सकें।

1.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में लाभांश नीति तथा इसका प्रभाव अशधारियों एवं कम्पनी पर किस प्रकार पड़ता है यह लाभांश नीतियों के विभिन्न प्रकारों द्वारा पता चलता है। अतः लाभांश नीति राष्ट्रीय बचत विनियोग व आर्थिक विकास को प्रोत्साहित तथा हतोत्साहित करने में प्रमुख भूमिका निभाती है। लाभांश नीति से आशय लाभांश वितरित करने के सिद्धान्तों व योजनाओं से होता है। एक व्यावसायिक संस्था का उद्देश्य लाभ कमाना है। यह अपने आप में एक महत्वपूर्ण वित्तीय निर्णय है कि अर्जित लाभ का प्रयोग किस प्रकार किया जाय। मुख्य प्रश्न यह उठता है कि लाभ का पूर्ण उपभोग स्वामियों द्वारा किया जाए या उसे व्यवसाय में ही प्रतिधारित करके पुनर्विनियोग

किया जाये। एकल व्यापारी की दशा में इस प्रकार के निर्णय लेने में कोई भी समस्या खड़ी नहीं होती है। इसी प्रकार साझेदारी संस्था की दशा में साझेदारी संलेख में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि लाभ को साझेदारी/स्वामियों में किस प्रकार वितरित किया जाएगा। हाँ, कम्पनी संगठन स्वरूप की दशा में यह निर्णय कुछ जटिल अवश्य प्रतीत होता है।

कम्पनी अधिनियम मे स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि एक कम्पनी को अपने लाभ का कितना प्रतिशत अंशधारियों के बीच में वितरित करना एवं कितने प्रतिशत प्रतिधारित करना है जिससे कम्पनी अपनी भविष्य की योजना निर्धारित कर सके।

1.3 लाभांश नीति (Dividend policy)

कम्पनी एक कृत्रिम व्यक्ति है और व्यवसाय के अंशधारी अधिक फैले हुए होते हैं। लाभ के प्रयोग सम्बन्धी निर्णय का भार कुछ व्यक्तियों के समूह पर ही होता है जिन्हें संचालक मण्डल कहते हैं। अन्य संगठन स्वरूपों की भॉति कम्पनी के शुद्ध लाभ के बंटवारे की समस्या भी या तो लाभ को व्यवसाय में ही प्रतिधारित करने की या अंशधारियों को लाभांश के रूप में बांटने की होती है। अंशधारियों में विभाज्य लाभ के वितरण सम्बन्धी निर्णय महत्वपूर्ण होता है। इस सम्बन्ध में लिए गये निर्णय का मतलब अंशधारियों को अधिक आय, कम आय अथवा कुछ आय नहीं हो सकता है। विद्यमान अंशधारियों के रूख को प्रभावित करने के साथ–साथ लाभांश देने के निर्णय का प्रभाव भावी अंशधारियों, स्कन्ध विनिमय व वित्तीय संस्थाओं के रूख व व्यवहार (Mood and behaviour) पर भी पड़ सकता है, क्योंकि लाभांश का सम्बन्ध कम्पनी के मूल्य से होता है जो कम्पनी के अंशों के बाजार मूल्य को प्रभावित करता है। लाभांश के रूप में लाभ का वितरण विवाद का विषय बन सकता है। क्योंकि विभिन्न पक्षों जैसे संचालक, कर्मचारी, अंशधारी, ऋणपत्रधारी, ऋण प्रदान करने वाली संस्था आदि का हित टकराव का होता है। जहाँ कोई पक्ष नियमित आय (लाभांश) के पक्ष में होता है, तो कोई पूंजी वृद्धि या पूंजीगत लाभ में रूचि रखता है इस प्रकार लाभांश नीति का निर्माण करना एक जटिल निर्णय है। अनेक बातों का सावधानीपूर्वक मनन करना

पड़ता है परन्तु यह बात तय है कि कोई तदर्थ कदम उठाने के बजाय लाभांश के सम्बन्ध में एक यथोचित दीर्घकालीन नीति का पालन करना चाहिए। लाभांश नीति से आशय, लाभांश वितरित करने के सिद्धान्तों व योजना से होता है। लाभांश नीति का अर्थ संचालकों के उस निर्णय से है जिसके द्वारा वे यह तय करते हैं कि लाभ का कितना भाग लाभांश के रूप में वितरित किया जाय और कितना प्रतिधारित किया जाय।

वित्तीय प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य संस्था के बाजार मूल्य का अधिकीकरण होता है। संस्था के सम अंशों का बाजार मूल्य इस नीति से प्रभावित होता है कि शुद्ध लाभ अथवा आधिक्य को लाभांश भुगतान (Payout) और पुनर्विनियोजन (Plough back) के बीच किस प्रकार आवंटित किया जाता है। प्रबन्धकों के सामने यह विकल्प नहीं होता है कि लाभांश बांटे या न बांटे। हाँ, यह प्रश्न अवश्य होता है कि कितना लाभांश बांटे? इसका उत्तर लाभांश नीति से मिलता है। लाभांश नीति का अर्थ लाभांश वितरित करने के सिद्धान्तों व योजना से होता है। वेस्टन एवं ब्राइगम ने लिखा है, "लाभांश नीति अर्जनों का अंशधारियों को भुगतान एवं प्रतिधारित अर्जनों में विभाजन निश्चित करती है।"

अंशधारियों में लाभांश के रूप में अर्जन के वितरण के सम्बन्ध में प्रबन्धक द्वारा निर्मित नीति को ही लाभांश नीति कहते हैं। केवल एक विशेष सत्र में देय लाभांश से ही इसका सम्बन्ध नहीं होता है बल्कि कई वर्षों तक अपनाए जाने वाले कदमों से भी यह सम्बन्ध रखता है। लाभांश नीति निर्माण करने से पूर्व निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर ढूंढने होंगे

1. क्या संचालन के प्रारम्भिक वर्षों से ही लाभांश का भुगतान किया जाय?

2. क्या निश्चित प्रतिशत प्रत्येक वर्ष लाभांश दिया जाए, चाहे लाभ की मात्रा कुछ भी क्यों न हो?

3. क्या लाभ का एक निश्चित प्रतिशत लाभांश के रूप में दिया जाए जिसका आशय प्रति अंश परिवर्तनशील लाभांश होगा?

4. क्या लाभाश नकद दिया जाए?

5. क्या लाभांश बोनस अंशों के रूप में दिया जाय?

6. क्या लाभांश की सम्पूर्ण राशि प्रारम्भिक वर्षों में पुनर्विनियोजित की जाए?

1.4 लाभांश का अर्थ (Meaning of Dividend)

लाभ का वह भाग, जिसे विभाज्य लाभ कहते हैं कम्पनी के सदस्यों को प्राप्त होता है, लाभांश कहलाता है। विभाज्य लाभ से आशय कम्पनी के उन लाभों से है जो वैधानिक तौर पर कम्पनी के अंशधारियों के बीच बांटे जा सकते हैं। कम्पनी (लाभांश पर अस्थाई प्रतिबन्ध) अधिनियम, 1974 संशोधित 1975 के अनुसार विभाज्य लाभ का अभिप्राय कम्पनी के शुद्ध लाभ का 1/3 भाग या कम्पनी के सम अंशों के अंकित मूल्य पर भुगतान योग्य 12 प्रतिशत लाभांश की राशि व पूर्वाधिकार अंशों पर देय लाभांश की राशि (मे से जो भी कम हो) से होता है। इस आशय के लिए शुद्ध लाभ वह लाभ होता है, जो कम्पनी अधिनियम, 1956 की धारा 394 के प्रावधानों के अनुसार हो और उसमें से आयकर की राशि घटा दी गयी हो तथा कम्पनी अधिनियम की धारा 205 के अनुसार ह्रास घटा दिया गया हो।

लाभांश वस्तुतः कुल अर्जित आय में से समस्त व्ययों को घटाने के बाद व विशेष प्रकार के कोषों व करों के लिए प्रावधान करने के बाद बचे आधिक्य का ही एक भाग होता है। इस आधिक्य पर सम अंशधारियों का ही अधिकार होता है। हाँ पूर्वाधिकार अंशों की दशा में उन्हें इस आधिक्य पर सम अंशधारियों की तुलना में प्राथमिकता प्राप्त होती है। यद्यपि सम अंशधारियों का इस आधिक्य पर पूरा अधिकार होता है फिर भी कानूनी तौर पर अंशधारी इसके पूर्ण वितरण के लिए या तत्काल वितरण के लिए कम्पनी को बाध्य नहीं कर सकते हैं।

लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors affecting Dividend Policy) –

लाभांश नीति को निर्धारित करने वाले तत्व निम्नलिखित हैं :–

1. लाभ का स्तर (Level of profits) –

लाभांश का वितरण कम्पनी के वर्तमान व गत वर्ष के लाभों में से ही किया जा सकता है इसलिए लाभांश नीति को प्रभावित करने वाला सबसे प्रमुख तत्व कम्पनी का लाभ होता है । कम्पनी का लाभ, लाभांश की उच्चतम सीमा निर्धारित करने में सहायक होता है। इसी प्रकार स्थायी रूप से लाभ अर्जित करने वाली कम्पनियाँ उन कम्पनियों की अपेक्षा जिनके लाभ में उच्चावचन होता रहता है लाभ का अधिक भाग लाभांश के रूप में वितरित करती हैं।

2. नकदी की स्थिति (Position of Cash)–

यदि कम्पनी के पास लाभांश की घोषणा के समय पर्याप्त नकद उपलब्ध हो तो नकद लाभांश का भुगतान उचित रहेगा। उधार शर्तों पर विक्रय करने वाली सस्थाओं में तरलता स्थिति कमजोर होने पर नकद लाभांश न देकर बोनस अंशों का निगर्मन किया जाता है इसलिए कम्पनी की तरलता स्थिति भी लाभांश निर्णय को प्रभावित करती है।

3. पिछली लाभांश दरें (Past Dividend Rates) –

विगत वर्ष की तुलना में अचानक लाभांश दर एकदम बढ़ा दी जाए तो बाजार में सट्टे की प्रवृत्ति पनपेगी। यथासम्भव लाभांश दर स्थिर रखने का प्रयास कम्पनी प्रबन्ध द्वारा किया जाता है। इसलिए लाभांश घोषित करते समय संचालकों को विगत वर्षों की लाभांश दरों को आधार बनाना चाहिये।

4. अंशधारियों की अपेक्षाएँ (Expectations of Shareholders) –

अंशधारी जब अंश क्रय करते हैं तो वे लाभांश के बारे में कुछ अपेक्षाएं बना लेते हैं, उनका आदर संचालकों को करना चाहिए। वैधानिक दृष्टि से भी संचालक कम्पनी की आय को विभिन्न उद्देश्यों के लिए उपयोग में लाने के लिए स्वतंत्र होते हैं पर अंशधारियों के विचारों व आशाओं को वे भुला नहीं सकते, वरना भविष्य में अतिरिक्त पूंजी एकत्र करने में भारी कठिनाई आ सकती है।

5. स्थापित कम्पनी (Established Company) -

पुरानी कम्पनियां उदार लाभांश नीति अपना सकती हैं जबकि नव स्थापित कम्पनियों को अपनी आय का अधिकांश भाग विकास कार्यों में लगाना आवश्यक होता है। अतः वे अंशधारियों को कम दर से लाभांश देकर शेष आय का प्रतिधारण कर लिया करती है।

6. उच्चावचन (Fluctuations)-

उच्चावचनों अर्थात तेजी–मन्दी के साथ–साथ लाभांश नीति भी परिवर्तित हो जाती है । मन्दी के समय लाभ की मात्रा घट जाती है फलतः लाभांश दर में कमी करने के लिए कम्पनी बाध्य हो जाती है। अगर कम्पनी ने लाभांश समानीकरण कोष पर्याप्त मात्रा में रखा हो तो येन–केन प्रकारेण लाभांश की उचित दर बनाए रखने में सफल हो जाती हैं। तेजी के समय तो लाभ बढ़ने से कम्पनी जगत में लाभांश दर बढ़ाने की होड़ सी लग जाती है।

7. सरकारी नीति (Government Policy) -

सरकार की नीतियों में समय समय पर परिवर्तन होते रहते हैं जिससे कम्पनी के लांभों में कमी व वृद्धि होना अवश्यम्भावी हो जाता है। सरकार की औद्योगिक श्रम एवं प्रशुल्क नीतियों का लाभांश नीति पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए उदारीकरण के वर्तमान दौर में कम्पनी क्षेत्र के नियंत्रण व शुल्कों में कमी हो रही है। फलतः लाभ व लाभांश पर धनात्मक प्रभाव पड़ रहा है।

8. कर नीति (Tax Policy)-

कभी–कभी सरकार पूंजी निर्माण की गति तीव्र करने के उद्देश्य से लाभों को अधिकांश भाग को पुनर्विनियोजित करने वाली कम्पनियों को आय कर में सुविधाएं देती है। इसी प्रकार अधिक लाभांश वितरित करने वाली संस्थाओं पर अतिरिक्त कर लगाकर लाभों के पुनर्विनियोग को प्रोत्साहित किया जाता है। इसलिए लाभांश नीति पर कर नीति का प्रभाव पड़ता है।

9. सार्वजनिक मत (Universal Opinion)-

किसी भी लोकतांत्रिक देश में जनमत तथा सार्वजनिक प्रतिक्रियाओं का व्यापक प्रभाव लाभांश नीति पर पड़ता है। अधिक लाभांश देने वाली

कम्पनियाँ की जनता द्वारा आलोचना की जाती है। श्रमिक अपने वेतन और बोनस वृद्धि की और उपभोक्ता वस्तु मूल्य में कमी की मांग करने लगते हैं जिससे कम्पनी को कठोर लाभांश नीति अपनानी पड़ती है।

10. अन्य तत्व (Other Factors)-

लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले कुछ अन्य तत्व अग्रलिखित हैं

(अ) व्यवसाय की प्रकृति–लाभांश नीति पर व्यवसाय की संरचना का असर होता है।

(ब) स्वामित्व संरचना–पूंजी संरचना में अंशपूंजी की मात्रा का लाभांश पर प्रभाव पड़ता है।

(स) अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता–बाजार से पूंजी पुनः एकत्र करना पिछली लाभांश नीति की अहम भूमिका होती है।

(द) पूंजी बाजार में पहुँच एवं

(य) प्रबन्धकीय दृष्टिकोण आदि।

1.5 सारांश (Summary)

लाभांश नीति अर्जनों का अंशधारियों को भुगतान एवं प्रतिधारित अर्जनों मे विभाजन निश्चित करती है।

अंशधारियों में लाभांश के रूप में अर्जन के वितरण के सम्बन्ध में प्रबन्ध द्वारा निर्मित नीति को ही लाभांश नीति कहते हैं। केवल एक विशेष सत्र में देय लाभांश से ही इसका सम्बन्ध नहीं होता है बल्कि कई वर्षों तक अपनाए जाने वाले कदमों में भी यह सम्बन्ध रखता हैं ।

लाभांश नीति शब्द लाभांश नीति से मिलकर बना है। लाभांश से अभिप्राय कम्पनी के लाभों में से कम्पनी के अंशधारियों को मिलने वाले अंश से है। लाभांश नीति का आशय लाभ वितरित करने वाले सिद्धान्तों व योजनाओं से होता है। लाभांश नीति से आशय संचालकों के उस निर्णय से है जिसके द्वारा वे यह तय करते हैं कि लाभ के कितने भाग को लाभांश के

रूप में वितरित किया जाय और किस रूप में वितरित किया जाय।

1.6 शब्दावली

1. अंशपूजी (Share capital) – स्वामित्व पूंजी ही अंशपूजी है।
2. पूंजी बाजार (Capital Market) – दीर्घकालीन पूंजी प्राप्त करने वाला बाजार।
3 लोकमत (Public Opinion) – सार्वजनिक मत।
4. पुनर्विनियोजन (Plough Back) – लाभ को प्रतिधारित करना अर्थात लाभ को बाँटने की अपेक्षा कम्पनी में विनियोग करना।

1.7 स्व–परक प्रश्न

1. एक फर्म की लाभांश नीति को आकार देने वाले विविध तत्वों की समीक्षा कीजिए।

2. किसी फर्म के लाभांश निर्णय को प्रभावित करने वाले विविध तत्वों की व्याख्या कीजिए।

3. लाभांश नीति का अर्थ बताते हुए लाभांश नीति की व्याख्या कीजिए।

इकाई– 2 लाभांश के सिद्धान्त (Dividend Theories)

इकाई की संरचना

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 लाभांश के सिद्धान्त

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 स्व–परक प्रश्न

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि

– लाभांश के सिद्धान्तों को बता सकें।

– लाभांश के सिद्धान्तों के विभिन्न प्रावधानों को बता सकें।

– कम्पनी के लाभांश सिद्धान्तों को इस तरह प्रस्तुत कर सकें कि उनकी जानकारी से बैलेंस शीट को सही प्रारूप में प्रस्तुत किया जा सके।

2.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में लाभ वितरण के विभिन्न सिद्धान्तों का लाभांश निर्णय एवं प्रतिधारित लाभांश के निर्धारण में उनकी भूमिका से हैं। लाभांश निर्णय वित्तीय प्रबन्ध का महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिसका सम्बन्ध विनियोग निर्णय और अर्थ प्रबन्धन निर्णय दोनों से है। सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु अंश धारियों को लाभांश के रूप में दी जाने वाली लाभ की राशि का निर्धारण है। अंशधारियों की दृष्टि से नकद लाभांश का भुगतान स्वागत योग्य है लेकिन लाभांश नीति को रूप देते समय कम्पनी की आवश्यकता को भी ध्यान में रखना चाहिए। इस प्रकार लाभांश नीति के साथ–साथ प्रतिधारित करने की नीति भी प्रकाश में आ जाती है। लाभांश नीति व प्रतिधारण की नीति एक दूसरे के प्रतियोगी व द्वंद्वात्मक हैं। अधिक लाभांश का अर्थ कम प्रतिधारण और अधिक प्रतिधारण

का अर्थ कम लाभांश होता है। इन्हीं सभी बिन्दुओं की व्याख्या एवं लाभांश बांटने के सिद्धान्तों को इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है।

2.3 लाभांश के सिद्धान्त (Theories of Dividend)

लाभांश नीति एवं फर्म के मूल्य के सम्बन्ध में दो प्रकार की विचारधारा प्रकट की गई हैं –

1. लाभांश की प्रासंगिक विचारधारा (Relevance Concept of Dividend) तथा

2. लाभांश की अप्रासंगिक विचारधारा (Irrelevance Concept of Dividend)

प्रथम विचारधारा के समर्थक वॉल्टर तथा गोर्डन के अनुसार लाभांश नीति फर्म के मूल्यों को अधिकतम करने में बहुत महत्वपूर्ण एवं प्रासंगिक भूमिका निभाती है। इसके ठीक विपरीत अप्रासंगिक विचारधारा के समर्थक मोदीगिलयानी एवं मिलर के अनुसार, "लाभांश नीति और फर्म के मूल्य दोनों स्वतंत्र चर हैं। इन दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं होता है। लाभांश सम्बन्धी निर्णय की फर्म के मूल्य को अधिकतम करने में कोई भूमिका नहीं होती है। लाभांश निर्णय फर्म के मूल्यों के लिए पूर्णतया अप्रासंगिक होता है। यह विचिारधारा मोदीगिलयानी एवं मिलर के नाम पर ही एम.एम. उपागम (M.M.Approach) से प्रसिद्ध है।

वित्तीय प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र लाभांश निर्णय है जिसका सम्बन्ध लाभ वितरित करने एवं प्रतिधारित किये जाने वाले दोनों निर्णयों से है। और महत्वपूर्ण बात अंशधारियों को लाभांश के रूप में भुगतान की जाने वाली राशि के निर्धारण से है। अधिक लाभांश का अर्थ कम प्रतिधारण और अधिक प्रतिधारण का अर्थ कम लाभांश होता है। नकद लाभांश के भुगतान के कारण कम्पनी के विकास के लिए आवश्यक प्रतिधारित राशि में कमी आ जाती हैं दूसरी तरफ सुदृढ़ लाभांश नीति के अनेक लाभ भी होते हैं।

लाभांश निर्णय व मूल्य अधिकीकरण का उद्देश्य (Dividend Decision and Value Maximisaiton Objective) –

विनियोग निर्णय व अर्थप्रबन्धन निर्णय की भांति लाभांश निणर्य का उद्देश्य भी कम्पनी के मूल्य (उसके अंशों के बाजार मूल्य के सन्दर्भ में) का अधिकीकरण है। चूँकि अंशधारी कम्पनी के स्वामी होते हैं अतः कम्पनी के मूल्य के अधिकीकरण से उनके हितों की भी पूर्ति हो जाती है। किन्तु विद्वानों द्वारा इस तथ्य पर एक राय नहीं दी गयी है कि लाभांश नीति से कम्पनी के अंशों का बाजार मूल्य अर्थात कम्पनी का मूल्य प्रभावित होता है या नहीं। इस सम्बन्ध में दो विचारधाराएं हैं जो आपस में मेल नहीं खाती हैं। एक विचारधारा है कि कम्पनी के मूल्य से लाभांश निर्णय की सम्बद्धता (relevance) है और दूसरी विचारधारा है कि कम्पनी के मूल्य से लाभांश निर्णय की कोई सम्बद्धता (No relevance) नहीं है।

(1) लाभांश निर्णय की प्रासगिकता का विचार (Relevance Concept of Dividend Decision) – कुछ विद्वानों जैसे जे.ई. वाल्टर (J.E.Walter), एम. जे.गोर्डोन (M.J. Gordon), इजरा सोलोमन (Ezra Solomon) तथा गिटमैन (Gitman) आदि ने माना है कि कम्पनी के मूल्य को अधिकतम करने में, लाभांश निर्णय का महत्वपूर्ण स्थान है। दूसरे शब्दों में लाभांश के रूप में वितरित की जाने वाली राशि व भावी साधन हेतु प्रतिधारित लाभ की मात्रा के अनुपात में परिवर्तन से अंशों के बाजार मूल्य में परिवर्तन हो जाता है। अर्थात Payment Ratio का प्रभाव अंशों के बाजार मूल्य पर पड़ना स्वाभाविक है। इस प्रकार कम्पनी की उदार या कठोर नीति से कम्पनी के मूल्य का बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। वाल्टर तथा गोर्डान ने इस सम्बन्ध में अलग– अलग माडल सूत्र रूप में प्रतिपादित किया है।

(अ) वाल्टर का मॉडल या सूत्र (Walter's Model Formula) – वाल्टर के अनुसार लाभांश नीति का मूल्यांकन कम्पनी के वित्तीय उद्देश्य अर्थात मूल्य का अधिकीकरण के सन्दर्भ में ही किया जाना चाहिए। उनका तर्क है कि कम्पनी के मूल्य को लाभांश नीति का चयन हमेशा प्रभावित करता है। विनियोगों की लाभदायकता द्वारा ही लाभांश नीति निर्धारित की जानी

चाहिए। दूसरे शब्दों में यदि कम्पनी के पास बहुतायत मात्रा में लाभदायक विनियोग के अवसर है। तो नकद लाभांश शून्य होना चाहिए, क्योंकि लाभ ही फण्ड का स्रोत होगा। दूसरी ओर सम्पूर्ण लाभ हित शत–प्रतिशत लाभांश के रूप में अंशधारियों को बाटा जाना चाहिए। जब कम्पनी के पास कोई विनियोग का लाभदायक अवसर न हो क्योंकि इस दशा में अर्थप्रबन्धन हेतु फण्ड की आवश्यकता ही नहीं होगी। इन दो चरम सीमाओं के मध्य की स्थिति में लाभांश भुगतान अनुपात शून्य और एक के बीच का कोई भी भाग हो सकता हैं ।

वाल्टर का मॉडल निम्न मान्यताओं पर आधारित है।

(1) विनियोगों का अर्थप्रबन्धन प्रतिधारित आय के माध्यम से ही होता है, कम्पनी द्वारा सभी ऋण या अंश पूंजी निर्गमित नहीं की जाती हैं।

(2) कम्पनी की प्रत्याय की आन्तरिक दर 'r' (अर्थात प्रतिधारित आय की आन्तरिक उत्पादकता) तथा पूंजी की लागत 'k' (अर्थात बाजार में प्रचलित पूंजीकरण की दर) स्थिर रहती है। फलस्वरूप अतिरिक्त विनियोग प्रस्तावों से व्यावसायिक जोखिम में परिवर्तन नहीं होता हैं

(3) कम्पनी की सम्पूर्ण आय प्रतिधारित करके व्यवसाय में ही पुनर्विनियोग की जाती हैं या लाभांश के रूप में वितरित की जाती है।

(4) मुख्य कारकों जैसे प्रारम्भिक प्रति अंश आय (E) तथा प्रति अंश लाभांश (D) में कोई परिवर्तन नहीं होता है। परन्तु परिणाम निर्धारण हेतु (E) तथा (D) में परिवर्तन लाया जा सकता है। लेकिन (E) और (D) का कोई भी प्रदत्त मूल्य एक प्रदत्त मूल्य के निर्धारण करने पर स्थिर ही मान लिया जाता है।

(5) कम्पनी की आयु लम्बी तथा असमाप्य होती हैं

(6) अंशों का बाजार मूल्य भविष्य में सम्भावित लाभांशों के वर्तमान मूल्य से प्रभावित होते हैं।

(7) व्यवसाय की प्रतिधारित आय भविष्य में प्राप्त होने वाले लाभांश को प्रभावित करती है और इसमें अंशों का बाजार मूल्य भी प्रभावित होता हैं।

वाल्टर का सूत्र निम्नवत है –

$$P = \frac{D + r/k(E - D)}{k}$$

P = प्रति अंश बाजार मूल्य (Market price per share)

D = प्रति अंश लाभांश (Dividend per share)

E = प्रति अंश आय (Earnings per share)

r = आन्तरिक प्रत्याय दर (Internal rate of return)

k = पूंजी की लागत (Cost of capital)

वाल्टर के मॉडल के अनुसार लाभांश भुगतान अनुपात प्रति अंश लाभांश (D) को परिवर्तित करके निर्धारित किया जाता है जिस पर प्रति अंश बाजार मूल्य अधिकतम हो जाता है। अनुकूलतम लाभांश भुगतान के सम्बन्ध में उनके विचार अग्रवत हैं–

(अ) जब आन्तरिक दर (r) बाजार पूंजीकरण दर (k) से अधिक हो (r > k) – यह विकासशील कम्पनियों की दशा में होता है जिनके पास अधिकाधिक लाभदायक विनियोग अवसर होते हैं ताकि विनियोग पर प्रत्याय पूंजी की लागत से अधिक हो। इन कम्पनियों को विनियोग हेतु सम्पूर्ण आय को प्रतिधारित करना चाहिये यदि प्रति अंश मूल्य को अधिकतम करना है। दूसरे शब्दों में जब r > k तो लाभांश भुगतान अनुपात शून्य होना चाहिए। अर्थात P का मूल्य अधिकतम होगा जब D= शून्य होगा। नियम के रूप में जैसे–जैसे भुगतान अनुपात गिरता जाता है सम अंशों का बाजार मूल्य बढ़ता जाता है। (P increases as payout ratio declines).

r > k

(ब) जब आन्तरिक दर (r) बाजार पूंजीकरण दर (k) के बराबर हो (r-k) – यह स्थिति सामान्य कम्पनियों की होती है, जिनके पास सामान्यतः असीमित लाभदायक विनियोग अवसर नहीं होते हैं। इसलिए एक बार लाभदायक विनियोग अवसर समाप्त हो जाते हैं तो विनियोगों पर प्रत्याय पूंजी (r) की लागत के (k) बराबर होती है। जैसे ही r=k होता है, कम्पनी की लाभांश

नीति अंशों के बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं करती हैं अर्थात अंशों का बाजार मूल्य भुगतान अनुपात के प्रति संवेदनशील (insensitive) हो जाता है। इस प्रकार जब r=k होता है तो कोई लाभांश नीति अनुकूलतम नहीं होती है। एक लाभांश नीति उतनी ही अच्छी होगी जितनी कि दूसरी। नियम के रूप में सम अंशों का बाजार मूल्य भुगतान अनुपात से सम्बद्ध नहीं होता है। (P is insensitive to payout ratio).

$$r = k$$

(स) जब आन्तरिक दर (r) बाजार पूंजीकरण दर (k) से कम हो (r<k)- यह स्थिति विकासहीन या अवमुखी कम्पनियों की होती है जिनके पास लाभ के पुनर्विनियोग हेतु लाभदायक अवसर नहीं होते हैं या नाममात्र के होते हैं या ऐसे होते हैं कि उन पर (r) प्रत्याय पूंजी की लागत (k) से कम होती है । इसलिए लाभ का प्रतिधारण अलाभकार होता है। ऐसी स्थिति में कम्पनी को सम्पूर्ण लाभ को लाभांश के रूप में वितरित कर देना चाहिए। व्यवसाय में पुनर्विनियोग हेतु प्रतिधारण नहीं करना चाहिएं इससे अंशधारी कहीं और विनियोग करके अधिक प्रत्याय कमा सकते हैं। इस प्रकार जब r < k तो P का मूल्य अधिकतम होगा जब D=100% अर्थात E=D हो। नियम के रूप में जैसे–जैसे भुगतान अनुपात बढ़ता जाता है सम अंशों का बाजार मूल्य भी बढ़ता जाता है। (P increases as payout increases).

$$r < k$$

Illustration - 1

एक कम्पनी की प्रति अंश आय 20 रू. और बाजार पूंजीकरण की दर 20 प्रतिशत है। कम्पनी के समक्ष 60 प्रतिशत, 80 प्रतिशत तथा 100 प्रतिशतं लाभांश भुगतान अपनाने का विकल्प है। वाल्टर सूत्र का प्रयोग करके अंशों के बाजार मूल्य की गणना कीजिए, यदि आन्तरिक विनियोग पर प्रत्याय की दर (अ) 25 प्रतिशत (ब) 20 प्रतिशत तथा (स) 10 प्रतिशत हो।

Earning per share of a company is Rs. 20 and market capitalisation rate is 20%. The company has before it an option of

NMDC-131

adopting a payment ratio of 60%, 80% and 100%. Using Walter's formula of dividend payout ratio, compute the market value of the Company's share, if the rate of return on internal investment is (a) 25%. (b) 20% and (c) 10%.

Solution-

Payout ratios	(a) r=25%; r>k	(b) r=20%, r=k	(c) r=10%; r<k
	$\frac{r}{k}=\frac{.25}{.20}=1.25$	$\frac{r}{k}=\frac{.20}{.20}=1$	$\frac{r}{k}=\frac{.10}{.20}=.5$
(a) payout 60%	$P=\frac{6+1.25(20-6)}{.20}$	$P=\frac{6+1(20-6)}{.20}$	$P=\frac{6+.5(20-6)}{.20}$
D=6	Rs.117.5	Rs.100	Rs. 65
(b) payout 80%	$P=\frac{8+1.25(20-8)}{.20}$	$P=\frac{8+1(20-8)}{20}$	$P=\frac{8+.5(20-8)}{.20}$
D=8	Rs.115	Rs. 100	Rs. 70
(c)Payout100%	$P=\frac{20+1.25(20-20)}{.20}$	$P=\frac{20+1(20-20)}{.20}$	$P=\frac{20+.5(20-20)}{.20}$
D=20	Rs. 100	Rs. 100	Rs. 100

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि वाल्टर सूत्र हमें निम्न बिन्दु समझाता है कि,

(अ) जब r>k हो तो सम्पूर्ण आय का पुनर्विनियोजन होना चाहिए।

(ब) जब r<k हो तो सम्पूर्ण लाभ का लाभांश रूप में वितरण होना चाहिए।

(स) जब r=k हो तो तटस्थ रहना चाहिए।

वाल्टर मॉडल की आलोचना (Criticisms of Walter's Model)-

वॉल्टर का मॉडल एक श्रेष्ठ सैद्धान्तिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है परन्तु इसकी अंतर्निहित मान्यताएं ही आलोचना का कारण बनती है जो निम्न प्रकार से हैं:

1. बाह्य वित्तीयन नहीं (No External Financing)–

प्रो. वाल्टर की प्रमुख मान्यता है कि फर्म का वित्तीयन केवल प्रतिधारित आय से किया जाता है जो व्यवहार में संभव नहीं है।

2. स्थिर आंतरिक प्रत्याय दर (Constant Internal rate of Return)–

मॉडल में यह मान लिया गया है कि आंतरिक प्रत्याय दर स्थिर रहती है जबकि व्यवहार में विनियोगों में वृद्धि के साथ–साथ प्रत्याय दर घटती जाती है।

3. स्थिर पूंजी की लागत (Constant cost of capital) –

पूंजी लागत की स्थिरता की मान्यता भी सही नहीं है। वास्तव में संस्था की जोखिम के साथ परिवर्तित होती रहती है। विनियोक्ता का व्यवहार सदैव विवेकपूर्ण होता है और वह जोखिम से बचना चाहता है। वह वर्तमान लाभांश को सम्भावित लाभांश की तुलना में अधिक प्राथमिकता देता है। एक सामान्य अनुभव की बात है–'नौ नकद न तेरह उधार' **(A bird in hand is better than two in buss, A breakfast of today is better than a dinner of tomorrow)**। विनियोक्ता भविष्य के लाभांश की तुलना में वर्तमान के लाभांश को अधिक चाहता है। अतः जो फर्म वर्तमान मे कम लाभांश देकर आय का प्रतिधारण करती है उसके अंशों के लिए विनियोक्ता कम मूल्य देने के लिए तत्पर होता है। अर्थात कम लाभांश का भुगतान फर्म के अंशों के बाजार मूल्य में कमी लाता है।

(ब) गॉर्डन मॉडल (Gordon Model) – गॉर्डन का भी मत है कि लाभांश फर्म के मूल्य से सम्बद्ध है और लाभांश नीति फर्म के मूल्य को प्रभावित करती है।

गॉर्डन का मॉडल निम्न मान्यताओं पर आधारित है–

1. फर्म द्वारा केवल समता पूंजी का ही उपयोग किया जाता है।
2. आन्तरिक प्रत्याय दर (r) और पूंजी की लागत (k) निश्चित व स्थिर है।
3. फर्म का जीवन काल सतत रहेगा।
4. फर्म की आय पर कोई कर नहीं लगाया जाता है।
5. प्रतिधारित अनुपात स्थायी रहता है। इस प्रकार विकास दर (Growth rate) अर्थात $g = br$ भी स्थिर रहती है।

6. पूंजी की लागत विकास दर से अधिक है अर्थात

$$k > br = g$$

गोर्डोन के अनुसार एक अंश का बाजार मूल्य लाभांश के भावी असीमित बहाव के वर्तमान मूल्य से बराबर होता है। अतः

$$P = \frac{D1}{(1+k)} + \frac{D2}{(1+k)^2} + \ldots\ldots\ldots \frac{Dn}{(1+k)}$$

$$E = \frac{D1}{(1+k)^1}$$

$$t = 1$$

गोर्डोन मॉडल का एक सरलीकृत प्रस्तुतीकरण निम्न है –

$$P = \frac{E(1-b)}{k-br}$$

P = अंशों का मूल्य (Price of shares)

E = प्रति अंश आय (Income per share)

b = प्रतिधारित अनुपात (retaining ratio)

br = g विनियोग दर पर प्रत्याय में विकास दर (Return on investment rate)

r = विनियोग दर पर प्रत्याय दर (Return rate on investment rate)

k = पूंजी की लागत (Cost of capital)

गोर्डोन मॉडल के अनुसार फर्म की लाभांश नीति लाभदायक विनियोग अवसरों की उपलब्धि पर तथा पूंजी की लागत (k) एवं आन्तरिक प्रत्याय दर (r) के सम्बन्धों पर निर्भर करती है। स्थिति को निम्न रूप से समझा जा सकता है।

(अ) विकासशील फर्में अर्थात r>k प्रति अंश मूल्य (p) प्रतिधारित अनुपात (b) में वृद्धि के साथ बढ़ता है अर्थात लाभांश भुगतान अनुपात में कमी आने पर बाजार मूल्य बढ़ता है अन्य शब्दों में, जब r>k हो तो फर्म को कम लाभांश वितरित करना चाहिए और आय का अधिक भाग प्रतिधारित करना चाहिए। जिससे फर्म के अंशों का बाजार मूल्य अधिक हो।

(ब) सामान्य फर्में अर्थात r=k ऐसी स्थिति में प्रति अंश मूल्य कम्पनी की लाभांश नीति से प्रभावित नहीं होती है। यह कहा जा सकता है कि प्रतियोगी दशाओं में यह तुलना योग्य अंशों पर प्राप्य प्रत्याय दर (r) के बराबर होनी चाहिए ताकि लाभांश के रूप में वितरित फण्ड को बाजार में उसी दर पर विनियोजित किया जा सके जो कम्पनी की आन्तरिक प्रत्याय दर के बराबर हो। अर्थात r=k फलस्वरूप अंशधारी फर्म की लाभांश नीति में किसी भी परिवर्तन से न तो लाभ प्राप्त कर सकेंगे और न ही हानि उठा सकेंगे ओर इस प्रकार अंश का बाजार मूल्य अपरिवर्तित रहेगा। फलस्वरूप एक लाभांश नीति उतनी ही अच्छी होगी जितनी कि दूसरी।

(स) विकासहीन या अवमुख फर्में अर्थात r<k प्रति अंश मूल्य (P) प्रतिधारित अनुपात में वृद्धि के साथ घटता है अर्थात लाभांश भुगतान में वृद्धि होने पर बाजार मूल्य बढ़ता है। इस प्रकार जब r<k हो तो आय का प्रतिधारण अंशधारियों की दृष्टि में अनावश्यक होता है। प्रतिधारित प्रत्येक रूपया अंशधारियों को उपलब्ध उस फण्ड में कमी कर देता है जिसे वे कहीं और ऊंचे दर पर विनियोग कर सकेंगे और कम्पनी के अंशों के मूल्य को और कम कर देंगें।

Illustration - 2

तीन फर्मों के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना निम्नानुसार दी गई है –

	एक्स लि.	वाय लि.	जेड लि.
पूंजी की लागत (k)	12%	12%	12%
प्रति अंश आय (E)	10रू.	10रू.	10रू.
आन्तरिक प्रत्याय दर (r)	15%	12%	9%

गॉर्डन के सूत्र का प्रयोग करते हुए प्रत्येंक कम्पनी का बाजार मूल्य ज्ञात कीजिए जब भुगतान अनुपात (अ) 30 प्रतिशत (ब) 40 प्रतिशत (स) 60 प्रतिशत (द) 100 प्रतिशत हो । परिणामों पर टिप्पणी दीजिए।

The details regarding three firms are given below:

Cost of capital (k)	12%	12%	12%
Earning per share (E)	Rs.10	Rs.10	Rs.10
Internal rate of return on investment(r)	15%	12%	9%

NMDC-131

Find out market price of an equity share of each of these firms applying Gordon's formula when dividend payout ratio is (a) 30% (b) 40% (c) 60% and (d) 100% comment on the conditions drawn.

Solution-

Gordon's Formula $p = \frac{E(1-b)}{k-br}$

Retention ratio = (1-payout ratio) in case (a) 1-30% = 70%; (b) 1-40%= 60%; (c) 1-60% =40% and (d) 1-100%=0%.

Retention Ratio (b)	X limited	Y limited	Z limited
(a) b=70%	br-(bxr)or 7x.15=.105 $P = \frac{10(1-7)}{12-105}$ $= \frac{3}{015}$ $= Rs.200$	br=.7x.12=.084 $P = \frac{10(1-.7)}{.12-.084}$ $= \frac{3}{036}$ $= Rs.83$	br=.7x.09=.063 $P = \frac{10(1-.7)}{.12-.063}$ $= \frac{3}{.057}$ $Rs.53$
(b) b=60%	$br-(bxr)or.6\times.15=.09$ $P = \frac{10(1-.6)}{.12-.09}$ $= \frac{4}{.03}$ $Rs.133$	$br=.6x.12=.072$ $P = \frac{10(1-.6)}{.12-.072}$ $= \frac{4}{.048}$ $Rs.83$	$br=.6x.09=.054$ $P = \frac{10(1-.6)}{.12-.054}$ $= \frac{4}{.066}$ $Rs.61$
(c) b=40%	$br=(bxr)or.4x.15=.06$ $P = \frac{10(1-.4)}{.12-.06}$ $= \frac{6}{.06}$ $Rs.100$	$br=.4x.12=.048$ $P = \frac{10(1-.4)}{.12-.048}$ $= \frac{6}{.072}$ $Rs.83.$	$br=.4x.09=.036$ $P = \frac{10(1-.4)}{.12-.036}$ $= \frac{6}{.084}$ $Rs.71$
(d) b=0%	$br=.(bxr)Or\,0x.15=0$ $P = \frac{10(1-0)}{.12-0}$ $= \frac{10}{.12}$ $Rs.83$	$br=0x.12=0$ $P = \frac{10(1-0)}{.12-0}$ $= \frac{10}{.12}$ $Rs.83$	$br=0x.09=0$ $P = \frac{10(1-0)}{.12-0}$ $= \frac{10}{.12}$ $Rs.83$

उपरोक्त आधार पर निष्कर्ष निकलता है। अर्थात

(अ) जब r=k हो, तो लाभांश नीति अंशों के बाजार मूल्य से सम्बद्ध नहीं है।

विकासशील कम्पनी के अंश का बाजार मूल्य तभी अधिक होता है

जब प्रतिधारण अनुपात भी अधिक होता है।

(ब) जब r<k हो तो सम्पूर्ण लाभ के रूप में वितरित कर देना चाहिए।

अविकासशील कम्पनी के अंश का बाजार मूल्य तब अधिक होता है जब लाभांश भुगतान अनुपात अधिक एवं प्रतिधारण अनुपात कम होता है।

(स) जब r>k हो तो लाभ का प्रतिधारण उस समय तक करते रहना चाहिए जब तक b>k/r न हो जाएं।

वाय लिमिटेड एक सामान्य कम्पनी है। अतः इसके अंश के बाजार मूल्य पर भुगतान अनुपात व प्रतिधारण अनुपात में परिवर्तन का तब तक कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा जब तक इसके विनियोगों की आंतरिक प्रत्याय दर (r) पूंजी की लागत (k) के बराबर रहती है।

(2) लाभांश नीति की अप्रासंगिकता का विचार (Irrelevance Concept of Dividend Policy/Decision) – कुछ विद्वानों का मत है कि,

फर्म के मूल्य निर्धारण में लाभांश की प्रासंगिकता नहीं है। (Dividend is not relevant in determining the value of the firm) लाभांश नीति और फर्म का मूल्य दोनों स्वतंत्र चर हैं। मोदीग्लियानी व मिलर मॉडल जिसे M.M. मॉडल के नाम से जाना जाता है। वस्तुतः यह मान्यता है कि, लाभांश निर्णयों का अंश के मूल्य एवं फर्म के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसलिए इस सिद्धान्त को लाभांश का अप्रासंगिक मॉडल भी कहा जाता है। अन्य शब्दों में लाभांश नीति की कम्पनी के मूल्य को अधिकतम करने में कोई भूमिका नहीं है। कम्पनी के मूल्य को विनियोग नीति प्रभावित करती है न कि लाभांश नीति। इस विचारधारा के प्रमुख समर्थक मोदीग्लियानी व मिलर हैं इसलिए इस विचारधारा को M.M. Approach या M.M.Theory (सिद्धान्त) भी कहते हैं।

मोदीग्लियानी व मिलर का सिंद्धान्त (M.M.Theory) – इस सिद्धान्त का मूल तत्व यही है कि एक फर्म की लाभांश नीति अप्रासंगिक है और यह अंशधारियों के धन को प्रभावित नहीं करती है। उनका मत है कि, अंशधारी लाभांश या पूंजीगत लाभ के रूप में प्राप्त होने वाले प्रत्याय के प्रति तटस्थ रहते हैं। निश्चितता की दशा में और कर लाभ (Tax benefit) के अभाव में इस

बात से कोई फर्क नहीं पड़ता है कि फर्म आय को प्रतिधारित कर लेती है या लाभांश के रूप में बांट देती है। फर्म का मूल्य उसकी आय पर निर्भर करती है और आय कम्पनी की विनियोग नीति से प्रभावित होती है।

इस सिद्धान्त की कुछ मान्यताए हैं जो निम्न प्रकार हैं –

अ) पूंजी बाजार पूर्ण है। जिसमें सभी विनियोक्ताओं का व्यवहार विवेकपूर्ण है।

ब) कम्पनी के सम्बन्ध में सूचनाएं सभी को निःशुल्क उपलब्ध है।

स) लेन--देन तुरन्त और बिना लागत के होते हैं।

द) प्रतिभूतियों असीमित रूप में विभाज्य हैं।

य) पूंजी निर्गमन की लागत शून्यहै।

र) लाभांश आय तथा पूंजीगत लाभ पर कर की दर में कोई अन्तर विद्यमान नहीं है अर्थात कर लाभ उपलब्ध नहीं है।

ल) संस्था की विनियोग नीति, स्थिर एवं सुनिश्चित है।

व) कोई जोखिम विद्यमान नहीं है अर्थात विनियोक्ता भावी कीमत आय व लाभांश का पूर्वानुमान लगाने में सक्षम होगा।

श) व्यक्तिगत एवं निगम कर अनुपस्थित होते हैं।

तर्क (Arguments):

मोदीग्लियानी एवं मिलर का मत है कि लाभांश भुगतान प्राप्त करने से अंशधारियों के धन में जितनी वृद्धि होती है उतना ही फर्म द्वारा वित्त के बाह्य स्रोतों से पूंजी प्राप्त करने में कमी हो जाती है। इस प्रकार दोनों लेन–देन एक दूसरे की क्षतिपूर्ति कर देते हैं। लाभांश देने वाली कम्पनी बाह्य स्रोतों से ही वित्त प्राप्त करेंगी। जब लाभांश का भुगतान किया जाता है, तो अंशों का अन्तिम (Terminal) मूल्य गिरता है। जबकि अंशधारियों के कुल ध ान में कोई परिवर्तन नहीं होता है। एम.एम. सिद्धान्त के अनुसार किसी निर्दिष्ट अबधि के प्रारम्भ में अंशों के बाजार मूल्य (Po) को अवधि के अन्त में भुगतान किए गये लाभांश के वर्तमान मूल्य व अंशों के अन्तिम बाज़ार मूल्य के योग के बराबर माना जा सकता है। मोदीग्लियानी व मिलर ने यह भी स्वीकार

किया है कि यदि फण्ड की उगाही अंशों के अलावा ऋणों से भी की जाए तो भी लाभांश की असम्बद्धता के विचार पर कोई प्रभाव नहीं होगा।

इनके अनुसार अनिश्चितता की दशा में भी लाभांश नीति महत्वहीन है। दो समान व्यावसायिक जोखिम समान भावी आय की सम्भावनाएं तथा समान विनियोग वाली कम्पनियों का बाजार मूल्य भी अवश्य समान होगा, यदि बाजार में प्रत्येक विनियोक्ता का व्यवहार विवेकपूर्ण हो। ऐसी स्थिति में भावी लाभांश नीति और वर्तमान लाभांश नीति में अन्तर दो कम्पनियों के बाजार मूल्य को प्रभावित नहीं कर सकता, क्योंकि भावी लाभांश का वर्तमान मूल्य, वर्तमान अन्तिम मूल्य के समान है।

वास्तव में लाभांश एक उदासीन अवशेष (Passive Residual) निर्णय है। सूत्र रूप में एम.एम. मॉड़ल को निम्न तरह से समझाया जा सकता है।

$$P_0 = \frac{D_1 + P_1}{1 + k}$$

P_0 = वर्ष के प्रारम्भ में अंशों का बाजार मूल्य,

P_1 = अवधि के अंत में अंशों का बाजार मूल्य,

D_1 = वर्ष के अन्त में प्राप्य लाभांश

k = बाजार पूंजीकरण दर या समता पूंजी की लागत ।

मोदीग्लियानी एवं मिलर मॉडल की आलोचनाए (Criticism of Modigliani-Miller Model)

इस मॉडल की आलोचनाएं प्रमुखतः इसकी मनगढंत मान्यताओं के कारण की गयी है जो निम्न प्रकार से है।

1. **कर विभेदक**–इस मॉडल की व्याख्या में करों की अनुपस्थिति वास्तविकता से परे है। लाभांश तथा पूंजीगत लाभ दोनों के लिए आयकर की भिन्न दरें लागू होती हैं।

2. **निर्गमन लागत**– नए अंशों के निर्गमन पर अभिगोपन कमीशन व दलाली पर व्यय करना पड़ता है। अतः बाह्य वित्तीयन, आंतरिक वित्तीयन से मंहगा पड़ता है, जबकि इस मॉडल में निर्गमन लागत को शून्य मान लिया

गया है।

3. **विविधीकरण** – विनियोक्ता अपने विनियोग में विविधीकरण (Diversification) पसन्द करते हैं। अतः वे आय का लाभांश के रूप में वितरण पसन्द करते हैं ताकि प्राप्त लाभांश का विनियोजन दूसरी प्रतिभूतियों में कर सकें।

4. **अनिश्चितता** – व्यवहार में अनिश्चितता की स्थिति विद्यमान रहती है। और भविष्य के बारे में सही पूर्वानुमान सम्भव नहीं हो पाता है।

5. **पूर्ण बाजार**– व्यावहारिक पूंजी बाजार अपूर्ण होता है जिसमें समस्त सूचनाएं तुरंत निःशुल्क प्राप्त नहीं हो पाती हैं ।

6. **लाभांश का भुगतान** – लाभांश भुगतान अनुपात में वृद्धि संस्था के संभावित अर्जन में वृद्धि का संकेत देती है और इससे अंशों का मूल्य बढ़ता है। जबकि इस मॉडल में लाभांश को उदासीन अवशेष मान लिया गया है।

Illustration-3

एक्स कम्पनी के वर्तमान में 50 रू. पर बिकने वाले 5,000 अंश बकाया हैं। वर्तमान वर्ष के अन्त में कम्पनी 5 रू. प्रति अंश लाभांश भुगतान करने का विचार कर रही है। इस प्रकार कम्पनी के लिए पूंजीकरण दर 9 प्रतिशत है।

वर्ष के अन्त में अंश का मूल्य क्या होगा यदि (1) लाभांश घोषित नहीं किया जाता है और (2) लाभांश घोषित किया जाता है।

व्याख्या कीजिए कि चाहे लाभांश का भुगतान करें या न करें एम. एम. मॉड़ल के अनुसार अंशधारियों का धन एक समान रहता है।

X Company at present outstanding 5,000 shares selling at Rs. 50. The company is thinking of declaring a dividend of Rs. 5 per share at the end of current year. The capitalisation rate for this type of company is 9%.

What will be the price of the share at the end of the year if (i) no dividend is declared and (ii) a dividend is declared.

Explain that as per M.M. approach the wealth of Shareholders

is the same whether dividend is paid or not.

Solution:

(1) जब लाभांश घोषित न किया जाए,

दिया है P_0 = Rs. 50, D_1 = Rs. 0, k = 9%

$$P_1 = P_0 = (1 + k) - D_1$$

$$= \text{Rs. } 50\ (1+.09) - 0 = \text{Rs. } 109$$

(2) जब लाभांश घोषित किया जाए,

दिया है, P_0 = Rs. 50, D_1 = Rs. 5, k = 9%

$$P_1 = P_0 = (1 + k) - D_1$$

$$= \text{Rs. } 50\ (1+.09) - 5$$

$$= \text{Rs. } 109\text{-}5 = \text{Rs. } 104$$

उपरोक्त गणना से स्पष्ट है कि जब लाभांश घोषित नहीं किया जाए तो अंशधारी चालू वर्ष के अंत में अंशों के मूल्य के रूप में 109 रू. पाएंगे, जब लाभाश घोषित किया जाए तो अंशधारी अंशों के मूल्य के रूप में 104 रू. तथा लाभांश के रूप में 5 रू. प्रति अंश पाएंगे अर्थात कुल मिलाकर अब भी 109 रू. ही पाएंगे। इस प्रकार अंशधारियों का धन एक समान ही रहेगा चाहे लाभांश घोषित किया जाए या घोषित न किया जाए।

Illustration-4

कम्पनी 4 रू. प्रति अंश अर्जित करती है इसका पूंजीकरण 9 प्रतिशत पर हुआ है। और विनियोग पर प्रत्याय दर 15 प्रतिशत है।

वाल्टर मॉडल के अनुसार 50 प्रतिशत लाभांश अनुपात पर प्रति अंश मूल्य क्या होना चाहिए। बाल्टर के अनुसार क्या यह एक अनुकूलतम भुगतान अनुपात है।

Company earns Rs. 4 per share; it is capitalised at a rate of 9% and has a rate of return on investment of 15%.

According to Walter's model, what should be the price per share

at 50% dividend payout ratio? Is this the optimum payout ratio according to Walter?

Solution:

Walter's formula : $p = \frac{D + r/k(E-D)}{k}$

Here given r = .15,

k = .09,

E = rs. 4,

D = 50% Rs. 4 = Rs. 2.

$$p = \frac{2 + .15/.09(4-2)}{.09}$$
$$= \frac{2 + 1.67 x 2}{.09}$$
$$= \frac{2 + 3.33}{09} = \frac{5.33}{.09} = Rs.59.22$$

यह अनुकूलतम लाभांश भुगतान नहीं है, क्योंकि वाल्टर r>k न की स्थिति में फर्म के मूल्य का अधिकीकरण हेतु शून्य लाभांश प्रतिशत का सुझाव दिया है। शून्य प्रतिशत पर प्रति अंश मूल्य

$$P = \frac{0.15/.09(4-0)}{09}$$ होगा, जो अधिकतम होगा।
$$= \frac{6.67}{.09} = Rs.74.07$$

Illustration-5

रूचि सोया लि. की सम अंश पूंजी की लागत 12 प्रतिशत और फर्म का चालू बाजार मूल्य 10,00,000 रू. (10 रू. प्रति अंश की दर से) प्रथम वर्ष के अन्त में नये विनियोग (I), अर्जन, (E) तथा लाभांश (D) का मूल्य क्रमशः 3,40,000 रू. 2,75,000 रू. तथा 2,50 रू. प्रति अंश मानते हुए दर्शाइये कि एम.एम. मान्यता के अन्तर्गत लाभांश का भुगतान फर्म के मूल्य को प्रभावित नहीं करता है।

Golden View Ltd. has a cost of equity capital of 12% , the current market value of the firm (V) is Rs. 10,000,00 @ Rs. 10 per share) . Assume values for new investment (I), earnings (E) and dividends (D) at the end of 1st year as Rs. 3,40,000; Rs. 2,75,000 and Rs. 2.50 per share respectively, show under M.M. assumptions, the payment of the D does not affect the value of the firm.

Solution:

सूत्र है $P_1 = P_0 = (1+k) - D_1$

दिया है $P_1 = 10, D_1 = 5, k = 12\%$ or .12

जब लाभांश का भुगतान न किया जाए,

$P_1 = 10 = (1+ .12) = 0$

$= 10 \times 1.12$

$= 11.20$

नए विनियोग हेतु वित्त की राशि = Rs. 3,40,000-Rs.2,75,000= Rs.65,000

नए अंशों की संख्या $= \frac{65,000}{11.20} = 5,804$

फर्म का मूल्य (V) = $\{(n+n)P_1 - I + E\}/(1+k)$

$$V = \frac{\{1.00.000 + 65.000 / 11.20\} \times 11.20 - 3,40,000 + 2,75,000}{1.12}$$

$$= \frac{11,20,000 + 65000 - 3,40,000 + 2,75,000}{1.12}$$

$$= \frac{11.20.000}{1.12} = Rs.10,00,000$$

जब लाभांश का भुगतान किया जाए :

$P_1 = 10(1+.12)-2.5$

$= 11.20 - 2.5 = Rs. 8.70$

नए विनियोग हेतु वित्त की आवश्कयता = 3,40,000 - 25,000 = Rs. 3,15,000

लाभांश के बाद की राशि (2,75,000-2,50,000)=25,000 रू. होगी।

नये अंशों की संख्या $= \frac{3,15,000}{8.70} = Rs.36,207$

यहाँ पर फर्म का मूल्य $V = \frac{\{1,00,000 + 3,15,000 / 8.70\} x 8.70 - = 3,40.000 + 2.75.000}{1.12}$

$$V = \frac{8,70,000 + 3,15,000 - 65,000}{1.12}$$

$$= \frac{11,20,000}{1.12} = Rs.10,00,000$$

अतः फर्म का मूल्य दोनों परिस्थितियों में एक समान है। इस प्रकार निष्कर्ष निकलता है कि लाभांश भुगतान का फर्म के मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

Illustration-6

आप प्रदत्त निम्न सूचना से वाल्टर मॉडल के अनुसार एक फर्म के सम अंशों का सैद्धान्तिक बाजार मूल्य निर्धारित कीजिए।

From the following information supplied to you, determine the theoretical market value of equity shares of a firm as per Walter's model:

Earnings of the company	Rs. 30 lakh
Dividends paid	Rs. 10 lakh
No.of shares outstanding	2,00,000
Price earning ratio	10
Rate of return of investment	12%

क्या आप फर्म की चालू लाभांश नीति से सन्तुष्ट है? यदि नहीं, तो इस मामले में अनुकूलतम लाभांश भुगतान क्या होना चाहिए।

Are you satisfied with the current dividend policy of the firm? If not, what should be the optimal dividend payout ratio in this case?

Solution-

As per Walter's model :

$$P = \frac{D + r/k(E - D)}{k}$$

$$= \frac{5 + .12/.10(15 - 5)}{.10}$$

$$= \frac{5 + .12}{.10} = \frac{17}{.10} = Rs.170$$

इस प्रकार अंशों का सैद्धान्तिक बाजार मूल्य 170 रू. होगा।

$$E = \frac{30,00,000}{2,00,000} = 15, \quad D = \frac{10,00,000}{2,00,000} = 5$$

k is the reciprocal of P/E ratio $= \frac{1}{10} = .10$

फर्म की चालू लाभांश नीति संतोषजनक नहीं है। अनुकूलतम लाभांश भुगतान अनुपात शून्य होना चाहिए तभी बाजार मूल्य अधिकतम होगा।

2.4 सारांश

लाभांश के विभिन्न सिद्धान्तों का अध्ययन करने के पश्चात निष्कर्ष स्वरूप स्पष्ट है कि सिद्धान्त अपनी–अपनी मान्यताओं पर आधारित है। जबकि सामान्य आर्थिक स्थिति में यह निश्चित नही है कि अंशों का बाजार मूल्य एवं लाभांश भुगतान अनुपात उक्त सिद्धान्तों के आधार पर प्रभावित हो। अर्थात सम–सामयिक परिस्थितियाँ आर्थिक बाजार पर बदलती रहती हैं।

2.5 शब्दावली

1. **स्थिर पूंजी (Constant Capital)** – स्थायी पूंजी जिसमें परिवर्तन नहीं होता है।

2. **प्रतिधारित अनुपात (Retention Ratio)** – लाभ का वह भाग जो पुनर्विनियोग किया जाता है।

3. **भुगतान अनुपात (Payout Ratio)** – लाभ का वह भाग जो अंशधारियों में वितरित किया जाता है।

2.6 स्व–परक प्रश्न

1. "लाभांश नीति के वाल्टर एवं गार्डन मॉडलों में कोई मौलिक अंतर नहीं है। दोनों समान मान्यताओं पर आधारित है।" व्याख्या कीजिए।

2. वाल्टर के मॉडल में फर्म की लाभांश नीति आंतरिक प्रत्याय दर और पूंजी की लागत के सम्बन्ध पर निर्भर करती है। इस मत की क्या कमियॉ है।?

3. लाभांश नीति के मोदीग्लियानी एवं मिलर मॉडल की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

इकाई – 3 लाभांश नीतियों के प्रकार / स्वरूप (Forms of Dividend Policies)

इकाई की संरचना

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 लाभांश नीतियों के प्रकार / स्वरूप

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 स्व–परक प्रश्न

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त इस योग्य हो सकेंगे कि –

– कम्पनी की लाभांश नीतियों को बता सकें,

– लाभांश नीतियों के प्रकारों के विविध प्रावधान बता सकें,

– लाभांश नीतियों के प्रकारों एवं स्वरूपों को इस प्रकार प्रस्तुत कर सकें कि कम्पनी की बैलेंस शीट की स्थिति सही रूप में प्रस्तुत हो सके।,

3.2 प्रस्तावना

किसी कम्पनी के लिए लेखा वर्ष के अंत में अपनी व्यावसायिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप अंशधारियों को लाभांश के रूप में लाभ का एक हिस्सा वितरित किया जाता है । कम्पनी को लाभांश वितरण के लिए विभिन्न प्रकार की लाभांश नीतिया अपनानी पड़ती है। जिनका अध्ययन इस इकाई में प्रस्तुत किया गया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में लाभांश नीतियां कम्पनी की रणनीति का महत्वपूर्ण हिस्सा है। जिसके आधार पर कम्पनी बाजार में अपनी आर्थिक एवं वित्तीय स्थिति की मजबूती को अंशधारियों के सामने प्रस्तुत करती है। व्यवहार में एक कम्पनी कई लाभांश नीतियों में से किसी एक को अपनाती है। प्रबन्ध द्वारा जो भी नीति अपनाई जाती है वह विभिन्न कारणों

से प्रभावित होती है।

3.3 लाभांश नीतियों के प्रकार / स्वरूप (Forms of Dividend Policies).

कम्पनी बाजार में प्रचलित विभिन्न लाभांश नीतियों में से किसी एक को अपनाने का प्रयास करती है। प्रबन्ध द्वारा जो भी नीति अपनाई जाती है उसके विभिन्न कारण होते हैं। सबसे अधिक दो नीतियाँ प्रचलित हैं जो निम्नानुसार बताई जा रही हैं:–

(अ) v k; d k ,d fuf'pr ifr'kr **(Constant Percentage of Earnings)** – कम्पनी द्वारा अर्जन का एक निश्चित प्रतिशत लाभांश के रूप में वितरित करना, लाभांश नीति के रूप में अपनाया जा सकता है। इस नीति का लाभ यह है कि यह लाभांश वितरण में चालू आय को ध्यान में रखती है। इसलिए जब आय बढ़ती रहती है, तो अंशधारी अधिक लाभान्वित होते हैं। परन्तु जब आय गिरती है तो अंशधारी इस नीति को पसन्द नहीं करते हैं।आय में बढ़ोत्तरी लाभांश की राशि व लाभांश की दर में बढ़ोत्तरी लाती है। यह कम्पनी के अंशों के बाजार मूल्य पर बुरा प्रभाव डालती है और ऐसी परिस्थितियों में बाजार में बाह्य स्रोतों से पूंजी उगाहना जटिल कार्य हो जाता है। बाजार में कम्पनी अपनी साख स्थायी बनाने में कठिनाइयों का सामना करती है। इस नीति से उत्पन्न समस्या को इन शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं।

"इस नीति से जुड़े अस्थिर लाभांश के कारण अंशधारी बहुत ही ऊंची लाभांश दर पाने की इच्छा रखते हैं। बढ़ते हुए लाभांश की आकांक्षा उनके मन में होती है। यदि कम्पनी का लाभ स्थिर या कम होने लगता है, तो कुछ अंशधारी अपने को अलग करना चाहते हैं और अपने अंशों को बेचना शुरू कर देंगे जो अंशों के बाजार मूल्य को नीचे गिरा देगा।"

(ब) स्थायी लाभांश दर (Constant Dividend Rate) – चुकता पूंजी का एक निश्चित प्रतिशत लाभांश वितरण लाभांश नीति के रूप में अपनाया जा सकता है। इस नीति में अंशधारी पूर्ण रूप से आश्वस्त हो जाता है कि वह अपने विनियोग पर कितना लाभांश प्राप्त कर सकेगा। जैसा कि प्रारम्भ में बताया गया है कि कुछ अंशधारी अपने अंश की वार्षिक आय पर निर्भर

करते हैं और प्रतिवर्ष स्थिर राशि लाभांश के रूप में पाना पसन्द करते हैं। यह मान्यता है कि एक कम्पनी के अंशों का बाजार मूल्य ऊंचा हो सकता है, जब कम्पनी आय के एक निश्चित प्रतिशत की अपेक्षा एक स्थिर लाभांश दर से लाभांश का भुगतान करके जब आय बढती रहती है तो स्थिर लाभांश दर बनाए रखने में कोई परेशानी नहीं होती है लेकिन गिरती हुई आय की दशा में स्थिर लाभांश दर को बनाए रखने में कठिनाई आ सकती है। इसी कारण से यह सुझाव दिया जाता है कि बहुत ही नीचे स्तर पर लाभांश निर्धारित किया जाए ताकि कम्पनी के बुरे दिनों में लाभांश वितरण से कम्पनी के संसाधनों पर बुरा प्रभाव न पड़े और अच्छे दिनों में अतिरिक्त लाभांश देकर अंशधारियों को खुश रखा जाए।

उक्त दोनों नीतियों के अतिरिक्त प्रबन्धकों द्वारा अपनाई जाने वाली अन्य नीतियां निम्नानुसार है :–

(क) कठोर लाभांश नीति (Conservative Dividend Policy);

(ख) उदार लाभांश नीति (Liberal Dividend policy),

(ग) सुदृढ़ या सुस्थिर लाभांश नीति (Sound or Stable Dividend Policy).

(क) कठोर लाभांश नीति (Conservative Dividend Policy) –

इस नीति के अन्तर्गत लाभ का अधिकांश भाग व्यवसाय में ही पुनर्विनियोज़ित किया जाता है और अंशधारियों को लाभांश कम से कम दिया जाता है। इस प्रकार इस नीति को अपनाने पर प्रबन्ध कम्पनी की वित्तीय सुदृढ़ता एवं व्यवसाय की दशा को सर्वोपरि रखते हैं और अंशधारियों की वर्तमान आशाओं को गौण स्थान पर रखते हैं। इस नीति में भुगतान अनुपात (Payout ratio) बहुत ही कम या कभी कभी शून्य होता है। इस प्रकार की नीति उस कम्पनी की दशा में अच्छी व बुद्धिमत्तापूर्ण मानीजाती है।, जो विकासशील हो और जिसे सुधार व विस्तार कार्यक्रमों के लिए अधिक अतिरिक्त पूंजी की आवश्यकता हो। ऐसी कम्पनी के अंशधारियों को इस नीति से दीर्घकाल में लाभ मिलता है। परन्तु ऐसी नीति का पालन करते समय यह सतर्कता बरतनी चाहिए कि अंशधारियों के धैर्य सीमा को पार न कर जाए और जब प्रबन्ध अत्यधिक लाभ होने पर भी कुछ ही भाग लाभांश

के रूप में वितरित करते हैं तब इसे कठोर लाभांश नीति कहते हैं।

(ख) उदार लाभांश नीति (Liberal Dividend Policy) – जिसके अन्तर्गत प्रबन्ध लाभ के अधिकांश भाग का वितरण अंशधारियों में लाभांश के रूप में बांट देते हैं, उसे उदार लाभांश नीति कहते हैं। लाभ का उतना ही भाग प्रतिधारित किया जाता है जितना अत्यंत आवश्यक होता है। इस नीति में भुगतान बहुत ही ऊंचा होता है। और प्रतिधारित अनुपात बहुत ही नीचा होता है। इस नीति में अंशधारियों के दीर्घकालीन हितों की अपेक्षा वर्तमान हित को अधिक महत्व दिया जाता है। स्पष्ट है कि इस नीति के अनुपालन से कम्पनी के विकास, विस्तार व प्रतिस्थापन कार्यक्रमों के लिए फण्ड की कमी आ सकती है। तथा अंशों का सट्टा मूल्य भी बढ़ जाता है जिससे नई अंश पूंजी उगाहने में कम्पनी को कठिनाई होती है और उसकी वित्तीय सुदृढ़ता को हानि पहुँच सकती हैं। यह नीति वर्तमान आवश्यकताओं को ध्यान में रखती हैं परन्तु भविष्य के लिए जोखिम उठाती है। जिसका परिणाम यह होता है कि कम्पनी को पूंजी की कमी की समस्या का सामना करना पड़ता है।

(ग) सुदृढ़ या सुस्थिर लाभांश नीति (Sound or Stable Dividend Policy) – लाभांश भुगतान की यह नीति दीर्घकालीन होती है तथा एक अरसे तक इसमें कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किए जाते हैं यह नीति कम्पनी को भावी आवश्यकताओं एवं अंशधारियों की वर्तमान अपेक्षाओं को समान महत्व देती है। और इनमें यथोचित तालमेल बैठाती है। सामान्यतः लाभांश वितरण की राशि व प्रतिधारित आय की राशि करीब–करीब बराबर होती है सम्पन्न वर्षों में दिया गया लाभांश भी उतना ही होता है जितना कि सामान्य या प्रतिकूल वर्षों में। जब लाभ अधिक होता है, तो उस समय पर्याप्त कोषों का निर्माण कर लिया जाता है जिनका प्रयोग उस अवधि में लाभांश बितरण के रूप में किया जाता है, जब लाभ में कमी आ गई हो ताकि लाभांश दर को स्थिर बनाए रखा जा सके। सुदृढ़ लाभांश नीति वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बहुत ही उपयोगी एवं एक महत्वपूर्ण लाभांश नीति है। जिसे कम्पनी अपनी भावी प्रतिस्पर्धा को इस प्रकार एक मध्यवर्गी नीति के रूप में अपनाती है। निश्चित व अनिश्चित सभी प्रकार की सम्भावनाओं के लिए पर्याप्त आयोजन कर लिए जाते हैं अतः यह नीति कम्पनी की साख व प्रतिष्ठा बनाए रखने में सहायक

होती है।

सुदृढ़ लाभांश नीति में प्रबन्ध द्वारा अंशधारियों को दिए जाने वाले लाभांश की दर में यथासम्भव परिवर्तन न हो इसका प्रयास किया जाता है। यह स्मरणीय है कि कम्पनी के प्रबन्ध को सुस्थिर भुगतान अनुपात (Stable payment ratio) की अपेक्षा सुस्थिर लाभांश दर (State Dividend rate) की नीति अपनानी चाहिए।

सुदृढ़ लाभांश नीति के तत्व (Essential of a Sound Dividend Policy)

एक समुचित लाभांश नीति में निम्नलिखित तत्व मौजूद होने चाहिए:–

(क) स्थिरता (Stability) – स्थिरता से आशय लाभांश वितरण में नियमितता बनाए रखने से है। यदि कोई कम्पनी एक वर्ष तो बहुत ही अच्छा लाभांश घोषित व भुगतान करती है परन्तु अगले ही वर्ष लाभांश नहीं बांट पाती है तो इसे अच्छा नहीं कहा जा सकता है। इसके विपरीत, कोई कम्पनी मध्यम दर से ही प्रतिवर्ष लाभांश देती है तो उससे अंशधारी संतुष्ट रहते हैं और अंशों में सट्टेबाजी शुरू नहीं हो पाती है। इसलिए स्थिर लाभांश नीति कम्पनी की स्थिरता का मापक है। जिसके आधार पर कंम्पनी की सुदृढ़ता अनवरत बढ़ती रहती हैं।

(ख) लाभांश दरों के क्रमशः वृद्धि (Gradual rise in Dividend Rates)– संस्था को हमेशा प्रयत्न करना चाहिए कि लाभांश दरों में क्रमशः वृद्धि होती रहे। कम्पनी की आय अधिक होने पर व मूल्य बढने पर अंशधारियों की यही इच्छा होती है कि उनकी आय में भी वृद्धि की दर को ध्यान में रखकर लाभांश दर में थोड़ी–थोड़ी वृद्धि करते रहना चाहिए। यदि किसी वर्ष लाभ अधिक हो जाए तो अतिरिक्त लाभांश का वितरण भी करना चाहिए। लाभांश दर में वृद्धि अंशधारियों में उत्साह बनाए रखती है। जिससे भविष्य में पूंजी प्राप्त करने में कठिनाई नहीं होती ।

(ग) प्रारम्भ में कम लाभांश (Moderate Start) – कम्पनी को प्रारम्भ के वर्षों में कम दर पर लाभांश घोषित करना चाहिए जिससे कम्पनी की वित्तीय स्थिति सुदृढ़ हो सके। हाँ, कम्पनी की प्रगति के साथ–साथ लाभांश दर में भी धीरे–धीरे वृद्धिकर देनी चाहिए। लाभांश वितरण में परिवर्तन का

प्रभाव अंशधारियों की आय में परिवर्तन से है।

(घ) लाभांश का नकद वितरण (Distribution of Dividend in Cash) – लाभांश का वितरण अधिकतर नकद रूप में किया जाना चाहिए। परन्तु जब कम्पनी के कोषों में अत्यधिक वृद्धिहो जाए, तो स्टॉक लाभांश (बोनस अंश) भी घोषित किया जा सकता है। स्टॉक लाभांश का वितरण करते समय यह देखना चाहिए कि कम्पनी अति पूंजीकरण का शिकार तो नहीं हो रही है।

(ङ) अन्य तत्व (Other factors) – लाभांश का भुगतान केवल अर्जित लाभ में से ही करना चाहिए। गत वर्षों की हानियों को पूरा करने के बाद ही लाभांश घोषित करना चाहिए। वैसे तो लाभांश वर्ष में एक ही बार दिया जाता है परन्तु अंशधारियों के उत्साह में वृद्धि के लिए अन्तरिम लाभांश भी दिए जा सकते हैं।

सुदृढ़ लाभांश नीति के लाभ (Advantages of a Stable/Sound Dividend Policy)-

सुदृढ़ लाभांश नीति, सभी नीतियों का सार है। प्रत्येक कम्पनी इस नीति का अनुसरण करती है। सुदृढ़ लाभांश नीति की प्रमुख विशेषता लाभांश की स्थिरता एवं नियमितता है। जब लाभांश नीति में स्थायित्व का अभाव होता है, तो अंशों के बाजार मूल्य में उच्चावचन होता रहता है जिससे कम्पनी और अंशधारी दोनों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति का लाभ सटोरिए उठाते हैं और कभी–कभी यह स्थिति कम्पनी के अस्तित्व को भी चुनौती दे सकती है। एक सुदृढ़ लाभांश नीति के निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं।

(क) अंशधारियों में सन्तोष (Shareholder's Satisfaction) – कुछ अंशधारी (जैसे मध्यवर्गीय या वृद्ध व्यक्ति या पेंशन प्राप्त व्यक्ति) आय के प्रति बहुत ही जागरूक एवं सतर्क होते हैं और वे नियमित रूप से प्रतिवर्ष मिलने वाले लाभांश को अधिक महत्व देते हैं। एक सुदृढ़ लाभांश नीति के द्वारा ऐसे अंशधारियों को सन्तुष्ट रखा जा सकता है । इस नीति का प्रभाव सर्वाधिक मध्यम वर्ग के अंशधारियों पर पड़ता है जिससे कम्पनी की औसत पूंजी प्रभावित होती है।

(ख) अंशधारियों में विश्वास जगाना (Confidence among shareholders) – एक स्थाई व नियमित लाभांश की राशि प्राप्त करने से अंशधारियों के मन में अंशों के प्रति विश्वास जग जाता है। किसी वर्ष लाभांश कम होने पर कम्पनी लाभांश में कटौती नहीं करती है और कोषों में से नियोजन करके लाभांश बांटती है। इसके कारण पूंजी बाजार में इन अंशों की साख अच्छी बनी रहती है। और भविष्य में पूंजी प्राप्त करने में आसानी होती है।

(ग) अंशों के बाजार मूल्य में अपेक्षाकृत स्थिरता (Relative Stability in Market Price of Shares) – जिन अंशों पर नियमित दर से लाभांश मिलता है उनके बाजार मूल्यों में अपेक्षाकृत कम उच्चावचन होते है। तथा ऐसे अंशों में सट्टेबाजी की सम्भावनाएं कम रहती हैं। यही नहीं, कम्पनी की साख में वृद्धि होती है जिसका अनुकूल प्रभाव अंशों के बाजार मूल्य पर पड़ता है। पूंजी एकत्रित करने की संभावना ज्यादा आसान होती है।

(घ) दीर्घकालीन योजनाओं में सहायक (Helpful in Long-term Planning) – सुदृढ़ लाभांश नीति के अन्तर्गत वित्तीय आवश्यकताओं तथा उनकी पूर्ति के साधनों का सही मूल्यांकन किया जा सकता है। जिसके आध ाार पर दीर्घकालीन योजनाओं का निर्माण सरलतापूर्वक किया जा सकता है। स्थायी लाभांश नीति कम्पनी की दीर्घकालीन पूंजी प्राप्त करने के साधनों को सरल बनाती है।

(ङ) राष्ट्रीय आय में स्थायित्व (Stability in National Income) – यदि देश में कार्यरत सभी या अधिकांश कम्पनियॉ सुदृढ़ लाभांश नीति का पालन करेंगी, तो इसके कारण राष्ट्रीय आय में स्थिरता आएगी, जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के स्थायित्व का सूचक होगा। अंशधारियों की स्थायी आय से सम्पूर्ण देश की आय में स्थायित्व की सम्भावना प्रबल होती है।

उक्त लाभों को देखते हुए कुशल एवं अनुभवी प्रबन्धक सदैव इस बात का प्रयत्न करते हैं कि सुदृढ़ लाभांश नीति को ही अपनाना चाहिए।

लाभांश नीति के लक्ष्य (Goals of Dividend Policy)

लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले अनेक कारक है। अतः कभी भी

दो भिन्न कम्पनी समान लाभांश नीति का पालन शायद ही कर पाती है। कम्पनी की विशिष्ट परिस्थिति के अनुसार ही लाभांश नीति को असली जामा पहनाया जाता है। फिर भी एक लाभांश नीति के सन्दर्भ में निम्नलिखित पहलुओं को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए।

1. लाभांश नीति का विश्लेषण कम्पनी के मूल्य पर पड़ने वाले प्रभाव के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए।

2. लाभदायक अवसरों में कम्पनी द्वारा विनियोग मूल्य का सृजन करना चाहिए जब कम्पनी इस प्रकार के विनियोग के अवसर का त्याग करती है, तो अंशधारियों को अक्सर हानि होती है।

3. लाभांश, विनियोग व अर्थप्रबन्धन सम्बन्धी निर्णय एक दूसरे पर निर्भर करते हैं और अक्सर इनमें सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है।

4. लाभांश निर्णय को एक अल्पकालीन अवशेष निर्णय के रूप में नहीं मानना चाहिए क्योंकि वार्षिक लाभ में विचरणशीलता किसी वर्ष में लाभांश को शून्य भी कर सकती है। इसका कम्पनी पर गम्भीर प्रभाव पड़ सकता है और स्कन्ध विपणि में इसके अंशों की सूचियन समाप्त भी हो सकती है।

5. भुगतान अनुपात में अनिश्चित विचरणशीलता को दूर करने के लिए लाभांश को दीर्घकालीन अवशेष के रूप में मानना चाहिए।

6. कम्पनी द्वारा कोई भी लाभांश नीति का पालन क्यों न किया जाय, लाभांश नीति के मार्गदर्शन के रूप में सामान्य सिद्धान्तों से अंशधारियों को अवश्य सूचित करना चाहिए, ताकि वे अपनी पसन्दगी व आवश्यकता के सन्दर्भ में स्वयं निर्णय ले सकें।

7 लाभांश में अनिश्चित व बार–बार परिवर्तन नहीं होने देना चाहिए। लाभांश दर में कटौती अंशधारियों के लिए कष्टदायक होती है। अंशधारियों को समझाना प्रबन्धक के लिए सिरदर्द बन सकता है।

3.4 सारांश (Summary)

कम्पनियाँ अपनी आर्थिक एवं वित्तीय नीतियों में लाभांश नीति को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है। कम्पनी की कठोर लाभांश नीति जहाँ लाभों

के पुनर्विनियोजन पर बल देती है। वहीं उदार लाभांश नीति लाभों को अंशधारियों के बीच ज्यादा से ज्यादा वितरण पर विश्वास करती है। जिससे कम्पनी बाजार में अपनी साख का निर्माण कर सके।सुदृढ़ लाभ नीति वह मध्यमार्गी नीति है जिसमें कम्पनी स्थायित्व पर ध्यान देती है और सुदृढ़ लाभांश नीति कम्पनी के अंशधारियों को स्थायी बनाने में सफलता भी अर्जित करती है। जिसका परिणाम कम्पनी के अंशों का बाजार मूल्य भी सुदृढ़ एवं स्थायी रहता है।

3.5 शब्दावली

- **कठोर लाभांश (Conservative Dividend)** : इसके अन्तर्गत अंशधारियों को कम से कम लाभांश देने और लाभ का अधिकांश भाग पुर्नविनियोजित करना है।
- **उदार लाभांश (Liberal Dividend)** : लाभों का अधिकांश भाग अंशधारियों में वितरित करना है।
- **सुदृढ़ लाभांश (Sound Dividend)** साधारणतया लम्बी अवधि तक कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया जाना।

3.6 स्व–परक प्रश्न

1 विभिन्न प्रकार की लाभांश नीतियों की संक्षिप्त विवेचना कीजिए और स्थिर लाभांश नीति के लाभ एवं खतरों का परीक्षण कीजिए।

2. स्थिर लाभांश नीति की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए तथा इसके गुण दोषों को बताइये।

3. "लाभांश नीति का चयन उद्यम के मूल्य को सदैव प्रभावित करता है"। इस कथन का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

4. लाभांश नीतियों के विभिन्न प्रकारों अथवा प्रारूपों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

इकाई – 4 लाभांश के प्रकार (Types of Dividend)

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 लाभांश के प्रकार

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 स्व–परक प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि –

- कम्पनी के लाभांश के प्रकारों को बता सकेंगे
- कम्पनी लाभांश के विविध प्रावधान बता सकेंगे,
- कम्पनी के लाभांश को इस प्रकार प्रस्तुत कर सकें जिससे कम्पनी की दीर्घकालीन शोधन क्षमता स्पष्ट हो सकें।

4.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में कम्पनी के विभिन्न लाभांशों के प्रकारों को प्रस्तुत किया गया है। कम्पनी अपनी लाभांश नीतियों में लाभांश के प्रकारों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करती है। कम्पनी विभिन्न प्रकार के लाभांश का वितरण कर अंशधारियों को कम्पनी के प्रति निष्ठावान होने के लिए प्रेरित करती है। इस इकाई में विभिन्न प्रकार के लाभांशों का वर्णन किया जा रहा है। जो कम्पनी की लाभांश नीतियों को प्रभावित करते हैं। और कम्पनी अपने भावी अंशधारियों की संख्या में वृद्धि करती हैं।

4.3 लाभांश के प्रकार (Types of Dividend)

वितरण के आधार पर लाभांशों को निम्न स्वरूपों में विभक्त किया जा

सकता है–

1. नकद लाभांश (Cash Dividend) –

यह सबसे प्रचलित व लोकप्रिय प्रारूप है। जिसके तहत लाभांश का भुगतान नकद धन के रूप में किया जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि कम्पनी की तरलता की स्थिति नकद लाभांश देने योग्य हो और नकद लाभांश देने से तरलता पर विपरीत प्रभाव न पड़ता हो। कम्पनी अपनी तरलता नीति के आधार पर नकद लाभांश का निर्णय बाजार की परिस्थितियों के आधार पर करती है।

2. प्रपत्र लाभांश (Scrip Dividend) –

लाभ का अर्थ यह नहीं होता कि कम्पनी के पास पर्याप्त नकदी है। और नकद रूप में लाभांश दिया जा सकता है। लाभांश का भुगतान चालू वर्ष के लाभ में से या संचित कोषों में से या दोनों में से किया जाता है। यदि कम्पनी के पास पर्याप्त रोकड़ नहीं है और कम्पनी लाभांश देना चाहती है तो कम्पनी लाभांश की राशि के लिए प्रतिज्ञा–पत्र जो कुछ माह बाद देय हो, जारी कर सकती है। यदि आवश्यक हो तो शोधनीय लाभांश अधिपत्र भी जारी किये जा सकते हैं।

3. ऋणपत्रों के रूप में लाभांश (Debentures Dividend) –

ऋण पत्र के रूप में लाभांश देने का मन्तव्य यही होता है कि कम्पनी वर्तमान लाभांश का भुगतान भविष्य में करना चाहती है। ऐसा तभी किया जाता है, जब कम्पनी की तरलता की स्थिति नाजुक हो। एक कम्पनी लाभांश के बदले में अंशधारियों को ऋणपत्र बाण्ड्स भी जारी कर सकती है। ये ऋणपत्र एक निश्चित अवधि के बाद देय होते हैं और इन पर ब्याज भी देय होता है।

4. बोनस अंश या स्टॉक लाभांश (Bonus Share or Stock Dividend)–

संचित कोष में से नकद लाभांश न देकर उस कोष का पूंजीकरण कर दिया जाता है। अर्थात अंशधारियों को संचित कोष के बदले में समता अंश निर्गमित कर दिये जाते हैं। जब कम्पनी की तरलता स्थिति ठीक नहीं होती

है और नकद लाभांश देने में असमर्थ होती है तो अंशधारियों को एकत्रित भूतकाल के लाभ के बदले में अंश निर्गमित कर दिये जाते हैं। इन अंशों को बोनस अंश कहते हैं। अंशधारी इन बोनस अंशों को अपने पास ही रखते हैं या बेचकर नकद धन प्राप्त कर लेते हैं। वस्तुतः बोनस अंश लाभांश के बदले में निर्गमित नहीं किये जाते हैं। बल्कि सामान्य लाभांश भुगतान के सांथ–साथ प्रगतिशील कम्पनियों द्वारा समय–समय पर सम्पत्तियों को पूंजी बदलने के लिए बोनस अंश जारी किए जाते हैं। वर्तमान समय में पूंजी की समस्या से जूझ रही कम्पनियों के लिए बोनस अंश निर्गमित करना आसान होता है।

5. सम्पत्ति लाभांश (Property Dividend) –

लाभांश का यह प्रारूप असाधारण है। इस प्रकार का लाभांश स्कन्ध के रूप में या प्रतिभूतियों के रूप में हो सकता है। कभी–कभी एक कम्पनी दूसरी कम्पनी के अंशों व ऋणपत्रों को खरीदकर विनियोग के रूप में रखती है। यदि कम्पनी इन्हें बेचती है तो पूंजीगत लाभ का कर देना पड़ता है किन्तु जब इस प्रकार के विनियोग को लाभांश के रूप में अंशधारियों में बांटा जाता हो, तो कम्पनी पर कोई कर दायित्व नहीं बनता है।

6. संयुक्त लाभांश (Composite Dividends)–

जब लाभांश का कुछ भाग नकद रूप में तथा शेष अन्य सम्पत्ति के रूप में दिया जाता है, तो उसे संयुक्त लाभांश कहते है। संयुक्त लाभांश से अंशधारियों एवं कम्पनी दोनों को अपनी स्थितियों के अनुसार अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने का सरल या आसान विकल्प रहता है।

7. वैकल्पिक लाभांश (Optional Dividend) –

वैकल्पिक लाभांश में कम्पनी अपने अंशधारियों को विकल्प देती है कि वे अपनी इच्छानुसार नकद या सम्पत्ति के रूप में लाभांश ले सकते हैं। चूँकि अंशधारियों के सामने लाभांश नकद या सम्पत्ति के रूप में प्राप्त करने का विकल्प होता है, अतः इसे वैकल्पिक लाभांश कहा जाता है। वैकल्पिक लाभांश, अंशधारियों को विकल्प चयन का अवसर प्रदान करता है।

8. नियमित लाभांश (Regular Dividend) –

नियमित लाभांश कम्पनी के वित्तीय वर्ष के समाप्त होने पर वार्षिक

साधारण सभा में संचालकों द्वारा घोषित किया जाताहै और चुकाया जाता है। नियमित लाभांश अंशधारियों को निरन्तर वर्ष के अन्त में संचालकों द्वारा नियमानुसार भुगतान किया जाता है।

9. अन्तरिम लाभांश (Interim Dividend) –

अन्तरिम लाभांश कम्पनी के सदस्यों को बिना अन्तिम खाते बनाए हुए दिया गया लाभांश होता है। जब कंम्पनी यह महसूस करती है कि व्यवसाय में लाभ पर्याप्त मात्रा में अर्जित कर लिये गये हैं तो वर्ष की समाप्ति से पूर्व ही अन्तर्नियमों द्वारा अधिकृत होने पर संचालक अन्तरिम लाभांश घोषित कर सकते हैं। संचालकों द्वारा अन्तरिम लाभांश घोषित करने में पर्याप्त सतर्कता बरती जानी चाहिए, क्योंकि अगर लाभ–हानि खाते द्वारा प्रदर्शित लाभ चुकाये गये अन्तरिम लाभांश से कम रह जाता है तो इसके लिए संचालक व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी माने जाएंगे। इस दशा में पूंजी में से लाभांश का भुगतान हो जाएगा जो कि अवैधानिक होता है। वर्ष के मध्य में लाभांश का भुगतान होने पर वार्षिक लाभांश का आकलन सही नहीं होने पर एक तरफ जहां कम्पनी नुकसान उठाती है वहीं अच्छीं स्थिति होने पर कम्पनी के अंशों का बाजार मूल्य स्वाभाविक तौर पर बढ़ जाता है।

10. अतिरिक्त लाभांश (Extra Dividend) –

एक सुदृढ़ लाभांश नीति के लिए आवश्यक है कि नियमित लाभांश की दर में अत्यधिक परिवर्तन न किया जाय। परन्तु यदि कम्पनी को किसी विशेष वर्ष में अत्यधिक व अप्रत्याशित लाभ अर्जित हो जाए तो वह नियमित लाभांश के अतिरिक्त लाभांश के साथ ही मगंर पृथक रूप से दिया जाता है। अतिरिक्त लाभांश देने का उद्देश्य अंशधारियों के यह बता देना होता है कि अतिरिक्त लाभांश की राशि अस्थायी एंवं अनावर्ती है।

11. समापन लाभांश (Liquidation Dividend) –

समापन लाभांश कम्पनी के समापन अर्थात स्थायी रूप से बन्द होने की दशा में सम्पत्तियों के रूप में वितरित किया गया लाभांश है। समापन लाभांश कम्पनी के जीवनकाल में दुर्लभ और एक बार घटित होने वाली घटना होती है जिसका कोई दूसरा विकल्प नहीं होता है। कम्पनी का समापन

होने पर कम्पनी के जीवनकाल का अन्तिम लाभ उनकी पूंजी के अनुसार भुगतान किया जाता है।

12. बन्ध पत्र (Bond Dividend) –

इसमें कम्पनी नकद लाभांश न देकर बन्ध पत्रों के रूप में लाभांश वितरित करती है। इसका आशय यह हुआ कि कम्पनी वर्तमान में लाभांश न वितरित करके भविष्य में किसी निश्चित तिथि को ब्याज सहित लाभांश चुकाने का वायदा करती है। इसके लिए अंशधारियों को एक प्रमाण पत्र जारी किया जाता है जिसे बॉण्ड या बन्ध पत्र कहते हैं। बन्धपत्र लाभांश बाजार में उपलब्ध नये उपकरण के रूप में प्रयोग किया जाता है जिससे कम्पनियों को एक नया विकल्प और अंशधारियों को अवसर उपलब्ध होते हैं।

4.4 सारांश

कम्पनी अपने अंशधारियों (स्वामियों) को लाभ का एक भाग लाभांश के रूप में वितरित करती है। लाभांश का वितरण कम्पनी के विभिन्न रूपों जैसे – नकद, अंश, ऋणपत्र, बन्धपत्र एवं सम्पत्तियों के रूपों में भुगतान किया जाता है। लाभांश के प्रकार कम्पनी की लाभांश नीति का अहम हिस्सा है। जिससे कम्पनी अपनी वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं के आधार पर लाभांश का भुगतान करती है साथ ही साथ कम्पनी अपनी आन्तरिक आर्थिक एवं वित्तीय स्थिति मजबूत करने के लिए लाभों का शेष भाग कम्पनी में पुनर्विनियोजित करती है।

4.5 शब्दावली

नकद लाभांश (Cash Dividend) : नकद रूप में लाभांश वितरित करना।

स्कन्ध लाभांश (Stock Dividend) : आवंटित अंशों को बोनस अंश के रूप में निर्गमित करना।

सम्पत्ति लाभांश (Property Dividend) : वस्तुओं अथवा उत्पादित वस्तुओं के रूप में लाभांश दिया जाना।

अन्तरिम लाभांश (Interim Dividend) : अन्तरिम लाभांश कम्पनी के सदस्यों को बिना अन्तिम खाते बनाए हुए दिया गया लाभांश होता है।

4.6 स्व–परक प्रश्न

1. लाभांश से क्या आशय है? कम्पनियों द्वारा सामान्यतया घोषित किये जाने वाले विभिन्न प्रकार के लाभांशों का उल्लेख कीजिए।

2. भारतीय कम्पनियों द्वारा बांटे जाने वाले विभिन्न प्रकार के लाभांशों का वर्णन कीजिए।

3. लाभांश के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

4. लाभांश के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन कीजिए।

कुछ उपयोगी पुस्तकें

डॉ. एच. के. सिंह : वित्तीय प्रबन्ध (साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, 2001)

डॉ. एस. पी. गुप्ता : वित्तीय प्रबन्ध (साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, 2005)

डॉ. शैलेन्द्र कुमार भारल : वित्तीय प्रबन्ध (रामप्रसाद एण्ड संस, 2005)

रवि एम.किशोर : वित्तीय प्रबन्ध (टेक्समेन, अंग्रेजी माध्यम)